मुग़लों के अन्तिम दिन

आई-गई कि दिल ही जानता है। हर कदम पर उलझती थी और होश उड़े जाते थे।

अब मैं सोचती हूँ कि वह समय क्या हुआ? वे आनन्द के दिन कहाँ चले गये, जब हम अपने महलों में स्वतन्त्र तथा निश्चिन्त फिरा करते थे? पूज्यवर की छत्र-छाया सिर पर थी, और लोग हमें 'मलका-आलम' कहकर पुकारते थे। ससार के उतार-चढ़ाव ऐसे ही होते हैं।

मुझे अच्छी तरह याद है कि जब पूज्यवर हुमायूँ के मक़बरे में बन्दी किये गये, और एक गोरे ने चचाजान मिरज़ा अबूबकर बहादुर के तमाचा मारा, तो मिरज़ा सोहराब तलवार घसीटकर दौड़े। किन्तु दूसरे गोरे ने उनके भी गोली मारदी, और वह एक 'आह' खींचकर चचा जान की लाश पर गिर पड़े, और तड़पकर ठण्डे हो गये। मैं मूरत बनी तमाशा देखती रही। इतने में ख्वाजासरा आया और कहने लगा—"बेगम, क्यों खड़ी हो? चलो, तुम्हारे पिताजी ने बुलाया है।" मैं इसी अचेतावास्था में उसके साथ होली।

दरयाई दरवाज़े से उतरकर देखा कि अब्बाजान मिरज़ा क़्वेश बहादुर, घोड़े पर सवार, नगे-सर खड़े हैं सारा मुँह और सर के बाल धूल में सन रहे हैं। मुझे देखते ही आँसू भर लाये, और बोले—"लो सुलताना, अब हमारा भी कूच है। जवान बेटा, जिसके सेहरे लालसा थी,

ईद की शाम थी। घर-घर खुशियाँ मनाई जा रही थीं। मुबारिकबादों की धूम थी। पारितोषक और ईदियाँ बाँटी जा रही थीं। प्रत्येक मुसल्मान ने अपनी हैसियत से ज्यादा अपने मकान को सजाया था, और अपने बाल-बच्चों के साथ आनन्द में मग्न था। किन्तु असहाय विधवा राजकुमारी दो वक्त के उपवास मे दुखित बच्चे के शोक में आँसू बहाती थी, और अन्धेरे उजाड घर में बैठी आकाश को देख-कर कहती थी—"हे ईश्वर, मेरी ईद कहाँ है?" और हिचकियाँ ले-लेकर रोती थी। इधर शफाखाने में अनाथ राजकुमार माँ के वियोग मे बिलकता था।

'साहित्य-मण्डल-माला' की अठारहवीं पुस्तक—

मुग़लों के अन्तिम दिन

[ख्वाजा हसन निज़ामी-कृत]

अनुवादक—

स्व० श्री० उमरावसिंह कारुणिक बी०ए०

प्रकाशक—
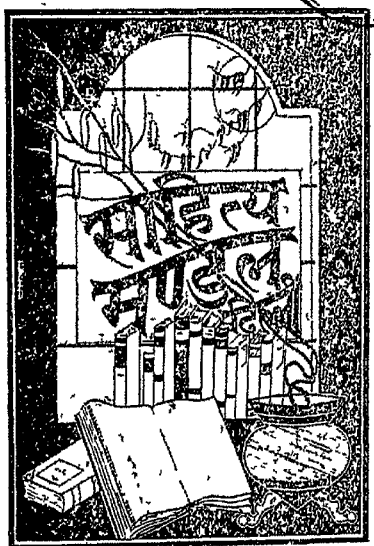
मूल्य एक रुपया

बहरे ठेलेवाले ने उसकी आवाज़ नहीं सुनी, और ठेले को सड़क से न बचाया। मोटर निकट आई, और ठेले से टकराई। ड्राइवर बहुत होशियार था। शीघ्र मोटर को रोक लिया, और (मोटर को) ठेले की टक्कर से कुछ हानि न पहुँची।

इस मोटर में एक पञ्जाबी सौदागर, जवानी और शराब के नशे में चूर, किसी बाजारी औरत को लिये बैठा था। ठेलेवाले को गरीब, बूढा और कमजोर देखकर क्रोध में आपे से बाहर हो गया। हाथ में बतौर फैशन के एक कोडा था। उसी को लिये, मोटर से उतरा, और बेचारे ठेलेवाले को मारने लगा।

ठेलेवाला अकेला, बूढा और कमजोर था—और सब से बढ़कर यह कि निर्धन तथा निस्सहाय था। किन्तु मालूम नहीं, दिल में क्या हिम्मत तथा साहस रखता था कि चार कोड़े तो पहले हमले में उसने खालिये, किन्तु फिर बैल हाँकने का चाबुक लेकर उसने भी उस नशे में मस्त जवान पर हमला किया। चाबुक के बाँस का डण्डा ऐसा मारा कि ऐयाश शराबी का भेजा फट गया। मोटर-ड्राइवर ने चाहा कि वह उस बूढ़े को दण्ड देने के लिये आगे बढे, किन्तु पैर बढ़ाने से पहले ही चाबुक की लकड़ी उसके सर पर भी पड़ी, जिसने उसका चेहरा लहू से लाल कर दिया। मोटर में बैठी हुई रण्डी ने घबराकर रोना आरम्भ किया, और

प्रकाशक—
ऋषभचरण जैन,
मालिक—साहित्य-मण्डल,
बाज़ार सीताराम, दिल्ली ।

दूसरी बार

मार्च, १९३२

मुद्रक—
जे० बी० प्रिंटिंग प्रेस,
चाँदनी चौक,
दिल्ली ।

देखते ही बहुत जाट जमा होगये, उन सब ने मिलकर मुझको खूब मारा, और मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। होश में आया, तो एक जगल में पड़ा था, और माता मेरे सरहाने बैठी रोरही थी।

"माता ने कहा—'वे जाट तुमको और मुझको एक चारपाई पर उठाकर यहाँ डाल गये हैं। जान पडता है, उन्होंने असबाब लूटने का यह बहाना किया था। फ़ौज-वौज कुछ न आई थीं।'

"वह बडा कठिन समय था। जंगल बियाबान, धूप की प्रखरता, एक मैं, एक मेरी दुर्बल, नेत्रविहीन माता, चारों ओर सन्नाटा, दुश्मनों का डर, मार्ग से अज्ञानता, और ज़ख्मों की दु खन जले पर नमक थी। माता ने कहा-'बेटा!' चलो। साहस करके आगे बढ़ो। यहाँ जगल में पड़े रहने से कुछ लाभ नहीं। मैं खड़ा होगया। सर तथा बाँहों पर ज़ख्म थे। पैरों पर भी चोट आई थी। किन्तु अन्धी माँ का हाथ पकड़कर चलना आरम्भ किया। काँटेदार झाडियाँ सारे मैदान में बिछी हुई थीं, जिन्होंने शरीर के कपडे 'फाड़ डाले, तथा पैरों को लहू-लुहान कर दिया। माता ठोकरें खा-खाकर गिरी पडती थीं, और मैं उनको सँभालता था। किन्तु ज़ख्मों के कारण निर्बलता से मुझमें भी चलने का साहस न था। दो समय से हमने कुछ भी खाया न था। संक्षेप यह, कि ऐसा समय था, जो ईश्वर दुश्मन को भी न दिखाये।

प्रकाशक के शब्द

'मुग़लों के अन्तिम दिन' के लेखक श्री० ख्वाजा हसन निज़ामी उर्दू के बड़े प्रसिद्ध लेखक हैं। आपकी कलम में ऐसी सादगी और शैली में ऐसी स्वाभाविकता है, कि पाठक का मन हठात् उनकी रचनाओं की ओर आकर्षित होजाता है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व का विकास इतनी सुन्दर रीति से किया है, कि जो-कोई उनसे मिलता है, उन पर रीझ जाता है। उनका जीवन इतना स्वच्छ और मधुर है, कि देखनेवाले देखकर और पढ़नेवाले पढ़कर उनकी रचनाओं में इस स्वच्छता और मधुरता का अनुभव करते और मुग्ध होते हैं।

ख्वाजा साहब ने दिल्ली के मुग़ल-बादशाहों के विषय में बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने अपना बहुत-सा

वह सिपाही भी मर गया था, और उसकी विधवा ने दूसरा विवाह कर लिया था। दिल्ली आकर मैंने भी अपनी क़ौम में दूसरी शादी करली, जिससे केवल एक लडकी पैदा हुई।

मेरे पति की पाँच रुपये मासिक अँग्रेजी-सरकार से पेन्शन थी। किन्तु पेन्शन ऋण में चली गई, और अब हम बड़ी तंगी तथा निर्धनता से जीवन व्यतीत करते हैं।

अमूल्य समय खर्च करके मुग़ल-कालीन इतिहास के विषय में बहुत-सी दुर्लभ बातों का पता लगाया है। सन् ५७ के ग़दर के बाद मुग़ल-तख़्त अकस्मात् छिन्न-भिन्न होकर ख़ाक में मिल गया, और इस स्वर्ण-भूमि पर सदियों से हुकूमत करनेवाला शाही परिवार दुर्भाग्य के ज्वालामुखी पर्वत का कोप-पात्र बनकर तबाह होगया। जिन मुग़ल-सम्राटों की एक हुङ्कार पर जगत् का कोना-कोना काँप उठता था, उनके वारिस को अन्त में फिरङ्गियों की क़ैद में आँसू बहाते-बहाते प्राण-त्याग करना पड़ा, जिन लाड़ले शाहज़ादों को कभी नङ्गी ज़मीन पर पैर रखना गवारा नहीं था, वह अन्त में पाँच रुपये मासिक की पेन्शन पर गुज़ारा करके, या दिन-भर जलती धूप में घूम-फिरकर, ठेला चलाकर, पत्थर ढोकर दिन काटने पर मजबूर हुए, जिन भोली-भाली फूल-सी शाहज़ादियों की नाज़-बरदारी के लिये दर्जनों लौंडी-गुलाम सिर-झुकाये तैयार खड़े रहते थे, उन्हें एक दिन बियाबान जङ्गलों में भटकना पड़ा, जिन असूर्यम्पश्या बेगमों के एक कृपा-कटाक्ष के लिये बड़े-बड़े राजा-महाराजा तरसते थे, उन्हें आख़िर, लम्बे-लम्बे मैदानों की ख़ाक फाँकनी पड़ी। वह समय बड़ा ही हृदयद्रावक था!—मानों पहाड़ की चोटी पर बने पर हुए एक सुदृढ़ दुर्ग का अगम्य समुद्र में समा जाना था!

"लो साहब, मैं मरती हूँ। कौन मेरे मुँह में शरबत टपकायेगा? कौन मुझको यासीन* सुनायेगा? किसकी रानों पर मेरा सर रक्खा जाएगा?" भगवन्, तेरे अतिरिक्त मेरा कोई नहीं। तू एक है। तेरा प्यारा (हज़रत मौहम्मद) मेरा मित्र, और यह चिराग औलिया मेरे पड़ोसी हैं।"

राजकुमारी मर गई, और दूसरे दिन कब्रिस्तान में गाढ़ दी गई। वही उसका वास्तविक छपरखट था, जिसमें वह क़यामत (प्रलय) तक सोता रहेगी।

---

* क़ुरान का एक अध्याय-विशेष

ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब ने राज-परिवार के इन दुर्दशाग्रस्त व्यक्तियों की बहुत-सी कहानियाँ उर्दू में लिखी हैं। हिन्दुस्तानियों में अपने इतिहास की रक्षा करने की क्षमता कभी नहीं आई। यही कारण है कि आज भारतवर्ष के प्राचीन गौरव का सर्वांश कराल काल के मुँह में लुप्त होगया है। यह प्रवृत्ति हिन्दू और मुसलमानों में क़रीब-क़रीब बराबर है। यह अत्यन्त लज्जा का विषय है कि सन् ५७ के विद्रोह-जैसी महत्वपूर्ण घटना के सम्बन्ध में हमारे यहाँ बहुत ही साधारण कोटि का साहित्य उपलब्ध है। अठारहवीं सदी की फ्रेञ्च राज्य-क्रान्ति के मुक़ाबले में भारत की गत क्रान्ति का महत्व बहुत ही अधिक है, परन्तु आज जहाँ फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति के सम्बन्ध में छोटी-से-छोटी घटना को लेकर ही बहुत-सी बड़ी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित होगईं और होरही हैं, वहाँ भारतीय पाठक अपने अभागे देश के ऐसे भीषण युद्ध पर थोड़ा-सा साहित्य भी नहीं पा सकते।

इस दृष्टि से ख़्वाजा साहब ने मुग़ल-राज-परिवार की दुर्दशाओं के सच्चे चित्र हमारे सम्मुख रखकर स्तुत्य कार्य किया है। उनके इस सत्प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

आशा है, हिन्दी के पाठकगण इस ऐतिहासिक पुस्तक का पठन करके प्रसन्न होंगे।

हिन्दी के इस संस्करण का संशोधन और सम्पादन नये सिरे से किया गया है, और एक-दो नई कहानियाँ भी जोड़ दी गईं हैं।

विनीत—

ऋषभचरण जैन

बहादुरशाह बादशाह

दिल्ली के अन्तिम बादशाह का स्वभाव साधुओं के समान था। उनके साधु-जीवन के अनेक दृष्टान्त दिल्ली तथा भारतवर्ष के अन्य स्थानों में प्रसिद्ध हैं। दिल्ली में तो अभी ऐसे सैकड़ों मनुष्य मौजूद हैं, जिन्होंने इस गुदड़ी पहननेवाले बादशाह को अपनी आँखों से देखा था, और कानों से इसकी वैराग्य-वाणी सुनी थी।

बहादुरशाह बड़े भक्त थे। देश का शासन-सम्बन्धी कार्य तो सब अँग्रेज़-कम्पनी के हाथ में था, अतएव बादशाह को ईश्वर-भजन तथा वैराग्य-रस में डूबी हुई कविता सुनने-सुनाने के अतिरिक्त और कुछ काम न करना पड़ता था। दरबार सजता था, तो उसमें भी आन्तरिक राज्य के आदेश सुनाये जाते थे, और कविता के रूप में अद्वैत के सिद्धान्तों तथा अद्वैतवादियों की चर्चा रहा करती थी। नियम था कि जब दरबारी लोग दीवान-ख़ास में एकत्रित हो जाते थे, तो बादशाह-सलामत दरबार में आने के लिए महल से चलने की तैयारी करते थे। ज्यों-ही बादशाह का क़दम

उठता, महल की भाट स्त्री आवाज़ लगाती—'होशियार! अदव-कायदा निगाहदार' अर्थात् 'सचेत हो जाओ! शिष्टाचार का ध्यान रक्खो'। इस स्त्री की आवाज़ दरबार के भाट सुनते थे, और वे भी 'होशियार! अदव-कायदा निगाहदार' की आवाज़ ऊँची करते थे, जिसको सुनकर सब दरबारी सिमट-सिमटाकर ठीक प्रकार से अपने-अपने स्थान पर आ खड़े होते थे। इस समय अद्भुत दृश्य होता था। सब अमीर तथा वज़ीर लोग गरदनें झुकाये, आँखे नीची किये, हाथ बाँधे खड़े रहते थे। मजाल नहीं, कि कोई दृष्टि उठाकर देख सके, या शरीर हिला सके। दरबार-भर में पूर्ण निस्तब्धता छा जाती थी। जिस समय बादशाह-सलामत गुप्त द्वार से सिंहासन पर पदार्पण कर चुकते, तो भाट पुकारता—"ज़ल्ले-इलाही बरामद, किर्द मुजरा अदब से" अर्थात् "ईश्वर का साया (न्यायकारी बादशाह) आगया है। अभिवादन करो।" यह सुनते ही एक अमीर सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ता, और बादशाह के सम्मुख अभिवादन-स्थान पर खड़ा होकर, तीन बार झुककर प्रणाम करता था। जिस समय प्रणाम किया जाता था, चोबदार अमीर की मान-मर्यादा के अनुसार उसका परिचय कराकर बादशाह का ध्यान उसके प्रणाम की ओर आकर्षित करता था। अस्तु। इसी प्रकार सब दरबारी यथा-क्रम प्रणाम करते थे। इसके पश्चात् बादशाह-सलामत कहते थे—"आज हमने

एक ग़ज़ल लिखी है। गज़ल का पहला शेर कहते हैं।" शेर सुनते ही एक अमीर फिर सहमा-सहमा अभिवादन-स्थान पर जाकर, गर्दन झुकाकर निवेदन करता था—"सुबहान अल्लाह ! कलामउल्मलूक मलूकउल् कलाम।" अर्थात् "धन्य है—महाराजाओं की वाणी महाराजाओं की ही वाणी है।" फिर अपने स्थान पर आ खड़ा होता था। इसी प्रकार प्रत्येक शेर पर भिन्न-भिन्न अमीर लोग अभिवादन-स्थान पर जाकर प्रशंसा किया करते थे। बहादुरशाह का काव्य अद्वैत तथा निराशा के भावों से भरा रहता था। यहाँ तक कि उनके आह्लादपूर्ण लेखों में भी नैराश्य तथा उदासीनता की झलक दिखाई देती है।

बहादुरशाह अपने शिष्य भी बनाया करते थे। जो मनुष्य शिष्य होता, उसके पाँच रुपये मासिक नियत हो जाते थे। इस कारण बहुत-से लोग इनके शिष्य हो गये थे। बहुत-से मनुष्य कहते हैं कि बहादुरशाह हज़रत मौलाना फ़ख़् साहब के शिष्य थे। किन्तु हज़रत मौलाना साहब के समय में बहादुरशाह अल्पायु थे। समझ में नहीं आता कि इस आयु में उन्होंने दीक्षा कैसे ली होगी। हाँ, यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि बचपन मे इनको मौलाना साहब की गोद में डाला गया था। मौलाना साहब के पश्चात् उनके पुत्र मियाँ कुतुबुद्दीन साहब से बहादुरशाह को बहुत लाभ पहुँचा था। वास्तव में उन्होंने दीक्षा भी आप ही से

ली थी। मियाँ क़ुतुबुद्दीन के पुत्र मियाँ नसीरुद्दीन, उपनाम मियाँ काले साहब, पर भी बादशाह की विशेष श्रद्धा थी। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी पुत्री मियाँ काले साहब को ब्याह दी थी।

यों तो बहादुरशाह को साधुओं से मिलने का चाव था ही, किन्तु हज़रत सुल्तान-उल्-मशायख़ ख़्वाजा निज़ाम-उद्दीन औलिया पर इनकी हार्दिक भक्ति थी। हज़रत की पवित्र समाधि पर वे बहुधा जाया करते थे। मेरे नाना* हज़रत ग़ुलाम हसन चिश्ती पर बहादुरशाह को मैत्री-पूर्ण भक्ति थी। नाना साहब बहुधा क़िले में जाते थे, और बहादुरशाह की विशेष एकान्त सभाओं में भी सम्मिलित होते थे। मेरी पूजनीया माता× बहादुरशाह के सैकड़ों किस्से, अपने पूजनीय पिता हज़रत शाह ग़ुलाम हसन चिश्ती द्वारा सुने हुए वर्णन् किया करती थीं, जिनको सुनकर बचपन में, जब कि मुझको बहादुरशाह के ऐश्वर्य का कुछ ज्ञान न था, मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ता था, तथा मेरे हृत्पटल पर संसार की असारता का चित्र खिंच जाता था।

---

*श्रीयुत ख़्वाजा हसन निज़ामी के नाना साहब।

×श्रीयुत ख़्वाजा हसन निज़ामी की माता।

राजा से रंक

बहादुरशाह बादशाह यदि गदर की मुसीबत में न फँसे होते, तो उनका साधु-जीवन बड़े आनन्द तथा शान्ति के साथ व्यतीत होता। किन्तु बेचारे विद्रोही सेना के चक्कर में पड गये, और उनकी आयु का अन्तिम भाग भीषण आपत्तियों मे व्यतीत हुआ। बहादुरशाह की सुपुत्री कल्सूम-ज़मानी बेगम स्वय मुझसे कहती थीं कि जब दिल्ली की बागी फौजों ने पहाडों की अँग्रेजी सेना से हार खाई, उसी दिन मैं प्रति दिन के अनुसार बादशाह-सलामत की सेवा मे प्रणाम करने के लिए उपस्थित हुई। बादशाह-सलामत इस समय प्रार्थना-स्थान बैठे विशेष भक्ति के साथ प्रार्थना कर रहे थे। मैं उनको प्रार्थना में तन्मय देखकर पीछे खड़ी हो गई, तथा उनके मुख से निकले हुए वचन सुनने लगी। वे कह रहे थे:—

"मुझ बूढ़े की परीक्षा का समय आ पहुँचा। हे ईश्वर, सन्तोष तथा साहस दे। मैं इस महान् परीक्षा मे उत्तीर्ण नहीं हो सकता। तेरे ही हाथ लाज है। भगवान्, इन कठोर

तथा अभागे सिपाहियों को ज्ञान दे कि वे निर्दोष बच्चों तथा स्त्रियों पर ज़ुल्म न करें। ईश्वर ! तू सर्व-व्यापक तथा सर्वज्ञ है। मैं बागियों के क्रूर कार्यों को बिल्कुल पसन्द नहीं करता। कोई सहारा और भरोसा नहीं रखता, जिसके बल पर इन क्रूरताओ को रोकूँ। बस, तेरे अतिरिक्त किससे कहूँ। तू ही हाकिमों का हाकिम है।"

जब बादशाह प्रार्थना समाप्त कर चुके, तो मेरी ओर मुँह किया। मैंने प्रणाम किया। बादशाह-सलामत आँखो मे आँसू भरकर बोले, "कल्सूम, जीती रहो। बेटी, ईश्वरेच्छा पर सन्तुष्ट रहने का समय आगया। अभी मैंने स्वप्न देखा है कि छुरियों से मेरे बच्चो की हत्या की जारही है, मेरे महल की स्त्रियाँ नंगे सिर सुनसान जगल मे खडी हैं, और रो रही हैं। इतने मे किसी ने आवाज़ दी—'अय ज़फ़र, यह हमारे प्रेम की डगर है। यहाँ सब पर आपत्तियें आती हैं। देख, घबरा न जाइयो।' इस आवाज़ को सुनते ही दिल को साहस हुआ, तथा जो दृश्य दिखाई दे रहा था, एक साधारण-सी बात मालूम होने लगी। आरम्भ मे मैं अपने बाल-बच्चों की असहाय दशा देखकर व्याकुल हो गया था। इस स्वप्न से ध्यान होता है कि मेरे वश के नष्ट होने के समय निकट आ गया है। कल्सूम, तू भी मेरी बेटी है, और ईश्वर की कृपा से बुद्धि और समझ रखती है। साधुओ की संगत उठाती है। जब आपत्ति का समय आये, तो सन्तोष का पल्ला हाथ से न

दीजियो। अपने भाई-बहनों को भी धैर्य तथा साहस का उपदेश कीजियो। इस संसार में कोई मनुष्य ऐसा नहीं है, जो सदैव सुख-चैन से रहता हो। कष्ट तथा आपत्तियें सब के साथ लगी हुई हैं।"

यह कहकर बादशाह-सलामत ने मुझको तथा अन्य कई स्त्रियों को रथों में सवार कराकर हुमायूँ के मक़बरे की ओर चलता कर दिया। मेरी माता जो कहती थीं कि मैंने अपने पिता हज़रत शाह गुलाम हसन साहब से सुना था कि जिस दिन बहादुरशाह दिल्ली के क़िले से निकले, तो सीधे हज़रत महबूब इलाही की दरगाह में उपस्थित हुए। इस समय बादशाह बड़े नैराश्य की दशा में थे। कुछ विशिष्ट ख्वाजासराओं तथा हवादार के कहारों के अतिरिक्त कोई मनुष्य साथ न था।

चिन्ता से बादशाह का चेहरा उतरा हुआ था। सफ़ेद दाढ़ी पर धूल जमी हुई थी। बादशाह का आगमन सुनकर नाना साहब दरगाह शरीफ में उपस्थित हुए, और देखा कि वे पवित्र समाधि के सिरहाने गुप्त द्वार से तकिया लगाये बैठे हैं। इनको देखते ही सदा की भाँति मुसकराये। वह बादशाह के सामने बैठ गये, और क्षेम-कुशल पूछने लगे, बादशाह बड़ी शान्ति से बोले—"मैं ने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि यह कम्बख्त बाग़ी सिपाही अपने मन को करनेवाले हैं। इन पर विश्वास करना भूल है। स्वयं भी डूबेंगे, और

मुझको भी डुबायेंगे। अन्त में वही हुआ कि भाग निकले। भाई, यद्यपि मैं एकान्त-वासी साधू हूँ, किन्तु हूँ उस लहू की स्मृति, जिसमें अन्तिम समय तक मुकाबला करने की गरमी होती है। मेरे बाप-दादाओं पर इससे अधिक कडे वक्त पड़े हैं, और उन्होंने हिम्मत नही हारी। किन्तु मुझे तो गुप्त रूप से परिणाम दिख गया है। अब यह बात निस्संदिग्ध है कि भारत के सिंहासन पर मैं तैमूर के वश की अन्तिम निशानी हूँ। मुग़ल-राज्य का दीपक दम तोड रहा है, और कोई घडी का महमान है। फिर जान-बूझकर व्यर्थ ,क्यो रक्त-पात कराऊँ ः इस कारण किला छोड़कर चला आया। देश ईश्वर का है। जिसको चाहे, दे। सैकडों वर्ष हमारे वश ने भारत भूमि मे आतङ्क तथा ऐश्वर्य के साथ सिक्का जमाया। अव दूसरो का समय है। वे शासन करेंगे, ताज-वाले कहलायेंगे, और हम उनके पराजित ठहरेंगे। यह कोई खेद तथा दुःख का विषय नही है। आखिर हमने भी तो दूसरों को नष्ट करके अपना घर वसाया था।"

उन खेद-भरी बातो के बाद बादशाह ने एक सन्दूकचा दिया, और कहा—"लो, यह तुम्हारे सुपुर्द है। अमीर तैमूर ने कुस्तुन्तुनिया को जीता था, तो सुलतान यल्दरम बीराज़ीद के खजाने से यह सम्पत्ति हाथ लगी थी। इसमे पैगम्बर साहब की पवित्र दाढ़ी के पाँच वाल हैं, जो आज-तक हमारे वंश मे अत्यन्त पवित्र पदार्थ के रूप से चले

आते हैं। अब मेरे ही लिये पृथ्वी-आकाश में कहीं ठिकाना नहीं, इनको लेकर कहाँ जाऊँ ? आपसे बढ़कर कोई इसका अधिकारी नहीं। लीजिये, इसको रखिये। यह मेरे हृदय तथा नेत्रों की ठण्डक है, आज की भयङ्कर आपत्ति मे इसे अपने से पृथक् करता हूँ।" नाना साहब ने वह सन्दूकचा लेलिया और दरगाह शरीफ के तोशखाने में दाखिल कर दिया। यहाँ यह अब तक मौजूद है, और प्रति वर्ष रबी-उल् अव्वल के मास से इसकी ज़ियारत कराई जाती है।

नाना साहब से बादशाह ने कहा—"आज तीन वक्त मे खाने का अवकाश नहीं मिला। यदि घर मे कुछ तैयार हो, तो लाओ।" नाना साहब ने कहा—"हम लोग भी मौत के किनारे खडे हैं। खाने-पकाने की सुध नहीं। घर जाता हूँ। जो कुछ मौजूद है, हाज़िर करता हूँ। प्रत्युत आप स्वय घर पधारे। जब तक मैं तथा मेरे बच्चे जीवित हैं, कोई मनुष्य आपके हाथ नहीं लगा सकता। पहले हम मर जायेंगे, इसके बाद कोई और समय आ सकेगा।" बादशाह ने उत्तर दिया—"आपकी कृपा है, जो ऐसा कहते हैं। किन्तु इस बूढे शरीर की रक्षा के लिए मैं कभी अपने अनुयायियों की सन्तति को वध-स्थल में भेजना सहन नहीं कर सकता। दर्शन कर चुका। अमानत सौप दी। अब दो गस्से पवित्र लङ्गर के खालूँ, तो हुमायूँ के मकबरे

में चला जाऊँगा। वहाँ जो भाग्य में लिखा होगा, पूरा हो जायगा।"

नाना साहब घर आये। पूछा कि कुछ खाने को मौजूद है। कहा गया कि बेसनी रोटी और सिरके की चटनी है। अत वही एक दस्तर.ख्वान मे सजाकर ले आये। बादशाह ने चने की रोटी खाकर तीन व.क्त के बाद पानी पिया, और ईश्वर को धन्यवाद दिया। इसके पश्चात् हुमायूँ के मकबरे में जाकर बन्दी हुए, और रगून भेज दिये गये। रंगून में भी बादशाह के साधुओं के समान जीवन में अन्तर न आया। जब तक जीवित रहे, एक सन्तुष्ट'ईश्वर-भक्त साधु के समान जीवन व्यतीत करते रहे।

शाहज़ादे का बाज़ार में घिसटना

(१)

गदर के एक वर्ष पहले का जिक्र है। दिल्ली से बाहर जङ्गल में कुछ शाहजादे शिकार खेलते फिरते थे, और लापरवाही से छोटी-छोटी चिड़ियों तथा फाख्ताओं को, जो दोपहर की धूप से बचने के लिये वृक्षों की हरी-भरी टहनियों पर बैठी ईश्वर को याद कर रही थी, गुल्ले मार रहे थे। इतने ही में सामने से एक फकीर, जो गुदड़ी ओढे हुए था, आ निकला। फ़कीर ने बड़े शिष्टाचार से शाहजादों को सलाम करके निवेदन किया—"मियाँ साहबजादो, इन बेजबान जानवरों को क्यों सता रहे हो ? इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। ये भी तुम्हारे समान दुःख तथा कष्ट अनुभव कर रहे हैं, किन्तु विवश हैं, और मुँह से कुछ नहीं कह सकते। तुम बादशाह की औलाद हो। बादशाहों को अपने देश निवासियों के साथ प्रेम तथा कृपा का वर्ताव करना चाहिए। ये जानवर भी देश में रहते हैं। इनके साथ भी दया तथा न्याय का बर्ताव उचित है।"

बड़े शाहज़ादे ने, जिसकी आयु अठारह वर्ष की थी, लज्जित होकर गुलेल हाथ से रख दी। किन्तु छोटे शाहज़ादे मिरज़ा नसीरउल् मुल्क, बिगड़कर बोले—"जा, दो टके का आदमी हमको उपदेश देने निकला है। तू कौन होता है हमको समझानेवाला? आखेट सब करते हैं। हमने किया तो कौन-सा पाप होगया।"

फ़कीर बोला—"साहब आलम, रुष्ट न हूजिये। आखेट ऐसे जानवरों का करना चाहिये कि एक जान जाय, तो दस-पाँच जनों का पेट भरे। इन नन्हीं-नन्हीं चिड़ियों को मारने से क्या परिणाम? बीस मारोगे, तब भी एक आदमी का पेट न भरेगा।" नसीर मिरज़ा फ़कीर के दूसरी बार बोलने से आग-बबूला होगये, और एक गुल्ला गुलेल में रखकर फ़कीर के घुटने मे इस ज़ोर से मारा कि बेचारा मुँह के बल गिर पड़ा। उसके मुँह से आप-ही-आप निकला—"हाय! टाँग तोड़ डाली।" फ़कीर के गिरते ही शाहज़ादे घोड़ों पर सवार होकर किले की ओर चले गये। फ़कीर घिसटता हुआ सामने के क़ब्रिस्तान की ओर चलने लगा। घिसटता जाता था, और कहता था—"वह सिंहासन क्योंकर स्थिर रहेगा, जिसके उत्तराधिकारी ऐसे कठोर और निर्दयी हैं! लड़के, तूने मेरी टाँग तोड दी, ईश्वर तेरी भी टाँगे तोडे, और तुझको भी इसी प्रकार घिसटना पड़े।"

(२)

तोपे गरज रही थीं। गोले बरस रहे थे। भूमि पर चारों ओर लाशों के ढेर दृष्टिगोचर होते थे। शहर दिल्ली निर्जन तथा सुनसान होता जाता। लाल क़िले से फिर वही कुछ शाहज़ादे विकलता की दशा में भागते हुए दिखाई दिये, और पहाड़गञ्ज की ओर जाने लगे। दूसरी ओर बीस-पचीस गोरे सिपाही धावा करते चले आते थे। इन्होने इन नवयुवक सवारो पर एकदम बन्दूकों की बाढ मारी। गोलियों ने घोड़ों और सवारों को छलनी कर दिया। ये सब शाहज़ादे ज़मीन पर गिरकर ख़ून मे तड़पने लगे। गोरे जब निकट आये, तो देखा कि दो शाहज़ादे परलोक का मार्ग ले चुके हैं, किन्तु एक साँस ले रहा है। एक सिपाही ने जीवित शाहज़ादे का हाथ पकड़कर उठाया, तो मालूम हुआ कि उसके कहीं ज़ख्म नही है। घोड़े से गिरने के कारण साधारण खुरेंचे आगई हैं, तथा भय के मारे बेहोश हो गया है। जीवित देख-कर घोड़े की बागडोर से शहज़ादे के हाथ बाँध दिये गये, और दो सिपाहियो की सरक्षकता मे उन्हे कैम्प भिजवा दिया गया। कैम्प पहाड़ी पर था, जहाँ गोरो के अतिरिक्त कालों की फ़ौज भी थी। जब बड़े साहब को मालूम हुआ कि यह बादशाह का पोता नसीर उल् मुल्क है, तो वह बड़े प्रसन्न हुये, तथा आज्ञा दी कि इसको सावधानता से रक्खा जाय।

(३)

विद्रोहियों की फ़ौजें हारकर भागने लगीं। अँगरेज़ी लश्कर धावा बोलता हुआ शहर में घुसने लगा। बहादुरशाह हुमायूँ के मक़बरे मे बन्दी कर लिए गये। तैमूर वंश का दीपक झिलमिलाकर 'बुझ गया। जगल भले घर की स्त्रियों के नंगे सरों तथा खुले चेहरों से बसने लगा। बाप बच्चों के सामने मारे जाने लगे। मातायें अपने युवा पुत्रों को भूमि पर लहू मे लोटता देखकर चीख़े मारने लगीं।

पहाडी कैम्प पर मिरज़ा नसीर-उल्-मुल्क रस्सी से बँधे बैठे थे कि एक पठान सिपाही दौड़ा हुआ आया और बोला, "जाइये, मैंने आपके छुटकारे के लिये साहब से आज्ञा प्राप्त करली है। शीघ्र भाग जाइये। ऐसा न हो कि कहीं दूसरी आपत्ति में फँस जायें।"

मिरज़ा बेचारे पैदल चलना क्या जानें कुछ समझ में न आता था कि क्या करें। किन्तु मरता क्या न करता? पठान को धन्यवाद दिया, और जङ्गल की ओर हो लिये, किन्तु कुछ मालूम न था कि कहाँ जाते हैं। एक मील चले होंगे कि पाँवों मे छाले पड़ गए। जीभ सूख गई। हलक़ में काँटे पड़ने लगे। थककर एक वृक्ष के साये में गिर पड़े, और आँखों में आँसू भरकर आकाश की ओर देखकर बोले—"हे ईश्वर, यह क्या ग़ज़ब हम पर टूटा! हम कहाँ जाये? किधर हमारा ठिकाना है?" ऊपर आँख उठाई तो वृक्ष पर

दृष्टि गई। देखा कि फ़ाख़्ता का एक घोंसला बना हुआ है, और वह आराम से अपने अण्डों पर बैठी है। इसकी स्वतन्त्रता तथा सुख पर शाहज़ादे को बड़ी ईर्षा हुई, और कहने लगे—"फ़ाख़्ता, मुझसे तू लाख दरजे अच्छी है कि आराम से अपने घोंसले में निश्चिन्त बैठी है। मेरे लिए तो आज पृथ्वी-आकाश में कहीं स्थान नहीं।"

थोड़ी दूर एक बस्ती दिखाई देती थी। साहस करके वहाँ जाने का विचार किया। यद्यपि पाँवों के छाले चलने न देते थे, किन्तु लस्टम-पस्टम गिरते-पड़ते वहाँ पहुँचे, तो अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ा।

एक वृक्ष के नीचे सैकड़ों गँवार एकत्रित थे। चबूतरे पर एक तेरह वर्ष की भोली-भाली लड़की बैठी थी, जिसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। कान लहू-लुहान हो रहे थे, और गँवार उसकी हँसी उड़ा रहे थे। ज्यों ही मिरज़ा की दृष्टि इस बच्ची पर पड़ी, और उस बेचारी ने मिरज़ा को देखा, दोनों के मुँह से चीखें निकल गईं।

भाई बहन को, और बहन भाई को चिपटकर रोने लगी। मिरज़ा नसीर-उल्-मुल्क की यह छोटी बहन अपनी माँ के साथ रथ में सवार होकर कुतुब साहब चली गई थी, मिरज़ा को बिलकुल भी खयाल न था कि वह इस आपत्ति में फँस गई होगी। पूछा—"मलका, तुम यहाँ कहाँ?" वह रोकर बोली—"काकाजी, गूजरों ने हमको लूट लिया।

अम्माँजान को दूसरे गाँववाले ले गये, और मुझको ये यहाँ ले आये। मेरी बालियाँ इन्होंने नोच लीं, मेरे तमाचे ही तमाचे मारे हैं।" इतना कहकर लड़की की हिड़की बँध गई, और फिर कोई शब्द उसके मुख से न निकला।

विवश शाहज़ादे ने अपनी ग़रीब बहन को ढाढ़स बँधाया और उन गँवारों से नम्रतापूर्वक कहने लगा—"इसको छोड़ दो।" गूजर बिगड़कर बोले—"अरे जा, आया बड़ा बिचारा! एक गँड़ासा ऐसा मारेंगे कि गरदन कट जायगी। इसको हम दूसरे गाँव से लाये हैं। ला, दाम देजा और लेजा।"

मिरज़ा ने कहा—"चौधरियो, दाम कहाँ से दूँ। मैं तो स्वयं तुमसे रोटी का टुकड़ा माँगने के योग्य हूँ। देखो, किंचित् दया करो। कल तुम हमारी प्रजा थे, और हम बादशाह कहलाते थे। आज आँखें न फेरो। ईश्वर किसी का समय न बिगाड़े। यदि हमारे दिन फिर गये, तो मालामाल कर देंगे।"

यह सुनकर गँवार बहुत हँसे, और कहने लगे—"ओहो! आप बादशाह-सलामत हैं। तब तो हम तुमको फिरङ्गियों के हाथ बेचेंगे, और यह छोकरी तो अब हमारे गाँव की टहल करेगी, झाड़ू देगी, ढोरों के आगे चारा डालेगी, और गोबर उठाएगी।"

ये बात हो ही रही थीं कि सामने से अँग्रेज़ी फौज आगई, और गाँववालों को घेर लिया, तथा चार चौधरियों को

और इन दोनों शाहज़ादे-शाहज़ादा को पकड़कर ले गये।

(४)

चाँदनी चौक के बाजार में फाँसियाँ गड़ी हुईं थीं। जिसको अङ्गरेज़ अफसर कह देते थे कि यह फाँसी पाने के योग्य है, उसी को फाँसी मिल जाती थी। प्रति दिन सैकड़ों मनुष्य फाँसी पर लटकाये जाते थे, गोलियों से उड़ाये जाते थे, तलवार से परलोक पहुँचाये जाते थे। चारों ओर इस क़त्ले-आम से तहलका मचा था।

मिरज़ा नसीर-उल्-मुल्क तथा उनकी बहन भी बड़े साहब के सम्मुख उपस्थित हुए। साहब ने इन दोनों को कम-उम्र देखकर निर्दोष समझा, और छोड़ दिया। दोनों छुटकारा पाकर एक साहब के यहाँ नौकर होगये। लड़की साहब के बच्चे को खिलाती थी, तथा नसीर-उल्-मुल्क बाज़ार से सौदा-सुलफ़ लाया करते थे। कुछ दिनों के बाद लड़की तो हैज़े से मर गई, मिरज़ा कुछ दिन इधर-उधर नौकरियाँ करते रहे। अन्त में सरकार ने उनकी पाँच रुपये पेन्शन नियत करदी, और मिरज़ा नसीर-उल्-मुल्क को नौकरी के झंझट से छुटकारा मिल गया।

(५)

एक वर्ष पहले की बात है। दिल्ली के बाज़ार चितली क़ब्र, कमरा बङ्गश-आदि में एक वृद्ध मनुष्य, जिनका चेहरा

चंगेज़ी वंश का पता देता था, कुल्हुवों के बल घिसटते फिरा करते थे। उनके पाँव फालिज के कारण निकम्मे हो गये थे। इस कारण हाथों को टेक-टेककर कुल्हुवों को घिसटते हुए मार्ग में चलते थे। इनके गले में एक झोली होती थी। दो पग चलते, और मार्ग में चलनेवालों को करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखते थे; मानो आँखों-ही-आँखों में अपनी दीनावस्था को प्रकट करके भीख माँगते थे। जिन लोगों को उनका वृत्तान्त मालूम था, तरस खाकर झोली में कुछ डाल देते थे। पूछने से मालूम हुआ कि इनका नाम मिरज़ा नसीर-उल्-मुल्क है, और यह बहादुरशाह के पोते हैं। सरकारी पेन्शन ऋण चुकाने मे खोदी। अब चुपचाप भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करते हैं। शाहज़ादे साहब का बाज़ार में घिसटना कठोर से कठोर हृदय को मोम कर देता था।

उस फ़क़ीर का कहना पूरा हुआ, जिसकी टाँगों में इन्होंने गुल्ला मारा था। अब इन शाहज़ादे साहब का परलोक वास होगया है।

अनाथ राजकुमार की ठोकरें

माहे-आलम एक राजकुमार का नाम था, जो देहली के बादशाह शाह-आलम के नवासों में थी। गदर में उसकी आयु केवल ग्यारह वर्ष की थी। राजकुमार माहे-आलम के पिता मिरज़ा नौरोज़ हैदर को अन्य शाही ख़ान्दानवालों के समान बहादुरशाह की सरकार से सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था, किन्तु इनकी माता के पास प्राचीन समय का बहुत-कुछ बचा-खुचा था। अतः इनको इस रुपये की अधिक परवा नहीं थी, और वह बड़े-बड़े वेतन-प्राप्त राजकुमारों के समान जीवन व्यतीत करते थे।

जब ग़दर पड़ा, तो माहे-आलम को माता बीमार थी। चिकित्सा हो रही थी। यहाँ तक कि ठीक उस दिन, जबकि बादशाह क़िले से निकले, और शहर की सब प्रजा विकल होकर चारों ओर भागने लगी, माहे-आलम की माता का परलोक-वास हो गया। ऐसी घबराहट के अवसर पर सब को अपनी जान के लाले पड़े हुए थे। इस मृत्यु ने अद्भुत नैराश्य उत्पन्न कर दिया। उस समय न क़फ़न का सामान

संभव था, न दफ़न का । न न्हिलानेवाली मिल सकती थी, न कोई मुरदे के पास बैठनेवाला था। शाहज़ादों में रस्म हो गई थी कि वे मुरदे के पास न जाते थे। सब काम किराये के आदमियों से लिया जाता था, जो ऐसे समय के लिये सदा तैयार रहते थे। ग़दर के कारण प्रत्येक मनुष्य अपनी मुसीबत में फँसा हुआ था। इस कारण कोई मनुष्य ऐसा न मिला, जो अन्तिम क्रिया कराता। घर में दो लौंडियाँ थीं, किन्तु वे भी मुरदे को न्हिलाना नहीं जानती थीं। स्वयं मिरज़ा नौरोज़ हैदर यद्यपि पढ़े-लिखे मनुष्य थे, किन्तु उनको पहले कभी ऐसा काम नहीं करना पड़ा था। इस कारण मुसल्मानी ढंग से न्हिलाना तथा कफ़न देना नहीं जानते थे।

इन लोगों को उसी विकलता में कई घंटे बीत गये। इतने में सुना कि अँग्रेजी फ़ौज शहर में घुस आई है, और अब क़िले में आया ही चाहती है। इस समाचार से मिरज़ा के रहे-सहे होश भी जाते रहे। शीघ्रता से लाश को चारपाई पर ही कपड़े उतारकर न्हिलाना आरम्भ किया। न्हिलाया क्या, बस पानी के लोटे भर-भरकर ऊपर डाल दिये। कफ़न कहाँ से मिलता ? शहर तो बन्द था। पलङ्ग पर बिछाने की दो उजली चादरें लीं, और उनमें लाश को लपेट दिया। अब यह चिन्ता हुई कि दफ़न कहाँ करें ! बाहर लेजाने का अवसर नहीं। इसी सोच में थे कि गोरे और सिक्ख-फ़ौज के कुछ सिपाही घर मे आगये। आते ही मिरज़ा और

उनके लड़के माहे-आलम को बन्दी कर लिया। इसके बाद घर का सामान लूटने लगे। सन्दूक़ तोड़ डाले, आल्मारियों के किवाड़ उखेड़ दिये, और पुस्तकों में आग लगादी। दोनों लौंडियाँ स्नानागारों में जा छिपी थीं। एक सिपाही की दृष्टि उन पर गई। उसने देखते ही अन्दर घुसकर सर के बाल पकड़े, और बिचारियों को घसीटता हुआ बाहर ले आया। यद्यपि इन फ़ौजियों को लाश का वृत्तान्त मालूम होगया था, किन्तु उन्होंने इस ओर कुछ ध्यान न दिया, और बराबर लूट-मार करते रहे। अन्त में बहुमूल्य सामान की गठरियाँ लौंडियों और स्वयं मिरज़ा नौरोज़ हैदर तथा उनके लड़के माहे-आलम के सर पर रक्खीं, और बकरियों के समान उनको हाँकते हुए घर से बाहर ले चले। उस समय मिरज़ा ने अपने लुटे हुए घर को अन्तिम करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखा, और अपनी पत्नी की बिना क़ब्र तथा बिना क़फ़न की लाश को अकेला चारपाई पर छोड़कर सिपाहियों के साथ चल दिये।

लौंडियों को तो बोझ उठाने और चलने-फिरने की आदत थी। मिरज़ा नौरोज़ हैदर भी सशक्त तथा सुदृढ़ थे, बोझ सर पर उठाये बेधड़के चल रहे थे, किन्तु बेचारे माहे-आलम की बुरी दशा थी। एक तो उसके सर पर बोझ उसके आयु तथा शक्ति से अधिक था। दूसरे वह स्वभावतया ही अत्यन्त सुकुमार तथा कोमल था। माता के परलोक-

त्रास का शोक अलग था। रात से रोते-रोते आँखें सूज गईं थीं। खाली हाथ चलने से चक्कर आते थे। वहाँ यह आफत कि सर पर बोझ, पीछे चमकती हुई तलवारें और शीघ्र चलने की रोषपूर्ण आज्ञा ! बेचारे के पाँव लड़खड़ाते थे, दम चढ़ गया था, शरीर पसीने-पसीने हो गया था। अन्त में अत्यन्त नैराश्य की दशा में पिता से कहा—"पिताजी, मुझसे तो चला नहीं जाता। गर्दन बोझ के मारे टूटी जा रही है। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है। ऐसा न हो, गिर पड़ूँ।" पिता से अपने लाड़ले बेटे की यह दुःख-भरी बातें न सुनी गईं। उसने मुड़कर सिपाही से कहा—"साहब, इस बच्चे का असबाब भी मुझको देदो। यह बीमार है। गिर पड़ेगा।" गोरा मिरज़ा की ज़ुबान बिल्कुल न समझा, और इस तरह ठहरने और बात करने को गुस्ताखी तथा बदनीयती समझकर दो-तीन मुक्के कमर में मारे, और आगे धक्का दे दिया। अन्याय-पीड़ित मिरज़ा ने मार खाई, किन्तु ममता के मारे लड़के का बोझ बग़ल में ले लिया। गोरे को यह बात भी पसन्द न आई। उसने ज़बरदस्ती मिरज़ा से गठड़ी लेकर माहे-आलम के सर पर रखदी, और एक घूँसा उस सुकुमार तथा असहाय राजकुमार के भी मारा। घूँसा खाकर माहे-आलम 'आह' कहकर गिर पड़ा, और अचेत हो गया। मिरज़ा नौरोज़ अपने प्राण-प्रिय पुत्र की यह दशा देखकर जोश

में आगये, और असबाब फेंककर एक मुक्का गोरे के गल्ले पर रसीद किया। फिर तत्काल ही दूसरा घूँसा उसकी नाक पर मारा, जिससे गोरे की नाक का बाँसा फट गया, और ख़ून का फ़व्वारा चलने लगा। सिक्ख सिपाही दूसरी ओर चले गये थे। इस समय केवल दो गोरे इन बन्दियों के साथ थे, और कैम्प को लिए जा रहे थे। दूसरे गोरे ने अपने साथी की यह दशा देखकर मिरज़ा के एक सङ्गीन मारी। किन्तु ईश्वर की लीला—वार ओछा पड़ा, और सङ्गीन मिरज़ा की कमर के पास से खाल छीलती हुई निकल गई। तैमूर राजकुमार ने इस अवसर को बहुत जाना, और लपककर एक मुक्का उस गोरे की नाक पर भी मारा। यह मुक्का भी ऐसा पड़ा कि नाक पिच गई, और लहू बहने लगा। गोरे यह दशा देखकर पिस्तौल तथा किरच तो सब भूल गये, और एकसाथ दोनों के दोनों मिरज़ा को चिपट गये, और घूँसों से मारने लगे। लौंडियों ने जो यह दशा देखी, तो असबाब फेंक, मार्ग की धूल मुट्ठियों मे भरकर गोरों की आँखों में झोंक दी। इस अचानक आपत्ति से गोरे कुछ समय के लिये बेकार हो गये, और उनकी किरच मिरज़ा के हाथ आ गई। मिरज़ा ने फ़ौरन् किरच घसीट ली, और एक ऐसा भरपूर हाथ मारा कि किरच ने एक का कन्धे से छाती तक का भाग काट डाला। इसके पश्चात् दूसरे गोरे पर आक्रमण किया, और उसको भी मार डाला। उन दोनों को मारकर माहे-आलम की

ओर दृष्टि फेरी। वह बिल्कुल अचेत था, पर पिता के गोद में लेते ही आँखें खोल दीं, और बाहें गले में डालकर रोने लगा। मिरज़ा इसी दशा में थे कि पीछे से दस-बारह गोरे और सिक्ख-सिपाही आगए। उन्होंने अपने दो साथियों को लहू मे न्हाया देखकर मिरज़ा को घेर लिया, और लड़के से पृथक् करके हाल पूछा। मिरज़ा ने सब बातें ठीक-ठीक बतादीं। सुनते ही गोरे क्रोध से लाल होगये। उन्होंने एक पिस्तौल से छः फ़ैर कर दिये, जिनसे आहत होकर मिरज़ा गिर पड़े, और ज़रा-सी देर में तड़पकर मर गये। मिरज़ा नौरोज़ की लाश को वहीं छोड दिया गया, और माहे आलम को लौंडियों-सहित पहाड़ियों के कैम्प में ले गये।

जब दिल्ली की विजय से निश्चिन्तता होगई, तो लौंडियाँ दो मुसल्मान पंजाबी अफ़सरों को देदी गईं। माहे-आलम पर एक अँग्रेज-अफ़सर की सेवा का भार पड़ा। जब तक यह अँग्रेज दिल्ली में रहा, माहे-आलम को अधिक कष्ट न हुआ, क्योंकि साहब के पास कई खानसामा और नौकर-चाकर थे। इस कारण अधिक काम-काज न करना पड़ता था। किन्तु कुछ दिनों के बाद यह साहब छुट्टी लेकर विलायत चले गये, और माहे-आलम को एक दूसरे अफ़सर के सुपुर्द कर गये। यह अफ़सर मेरठ छावनी में थे। इनका स्वभाव बड़ा उग्र था। बात-बात पर ठोकरें मारते थे। माहे-आलम इस मार-धाड़ को न सह सके, और एक दिन भागने का

विचार कर लिया। अतएव पिछली रात को घर से निकले। पहरेवाले ने टोका, तो कह दिया कि अमुक साहब का नौकर हूँ, और उनके कामसे अमुक गाँव को जाता हूँ, जिससे प्रात:-काल ही पहुँच जाऊँ। इस बहाने से जान बचाई, और जङ्गल का रास्ता लिया।

अल्प आयु, मार्ग से अज्ञानता, पकड़े जाने का डर—अद्भुत नैराश्य का समा था। अन्त में कठिनता से प्रातःकाल होते-होते मेरठ से तीन-चार कोस की दूरी पर पहुँच गये। मुल्ला साहब ने प्रश्न करने आरम्भ किये—"तू कौन है? कहाँ से आया है? कहाँ जायगा?" माहे-आलम ने इनको बातों में टाला। यहाँ एक फ़क़ीर भी ठहरे हुए थे। उन्होंने जो माहे-आलम की सूरत पर सुजनता के चिह्न देखे, तो प्रेम से पास बुलाया, और रात की बची हुई रोटी सामने रक्खी। माहे-आलम ने शाह साहब की सहानुभूति से प्रभावान्वित होकर अपनी दु:ख-भरी कहानी आदि से अन्त तक कह सुनाई। शाह साहब यह दशा सुनकर रोने लगे। माहे-आलम को छाती से लगाकर बहुत प्यार किया, और सान्त्वना देने लगे। उसके बाद कहा—"अब तुम फ़िक्र न करो। मेरे साथ रहो। ईश्वर रक्षक है।"

अत: उन्होंने एक रङ्गीन कुरता उनको पहना दिया, और साथ लेकर चल खड़े हुए। दो-चार दिन तक तो यह दशा रही कि जहाँ माहे-आलम ने कहा—"हज़रत, अब तो मैं थक

गया," तो वहीं किसी गाँव में ठहर जाते। किन्तु फिर उनको भी चलने का अभ्यास हो गया, और पूरी मंजिल चलने लगे। महीने-भर में अजमेर पहुँचे। यहाँ फकीर साहब के पीर, जो बग़दाद के रहनेवाले थे, मिले। इन पीर साहब को जब माहे-आलम का हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने भी उनके साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया, और इन दोनों को साथ लेकर बम्बई चले गये। बम्बई के निकट बाँदरा में शाह साहब का निवास-स्थान था। वही इनको भी रक्खा, और कई बरस यहाँ रहकर माहे-आलम ने कुरान-शरीफ तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया, तथा नमाज़-रोज़े का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

माहे-आलम कहते हैं कि जब मैं खूब समझदार हो गया, तो एक दिन मैंने बगदाद-निवासी शाह साहब से प्रार्थना की, —"मुझे अपना चेला (मुरीद) बना लीजिये।" शाह साहब बोले—"तुम तो मुरीदों के समान ही हो," मैंने निवेदन किया, "पूज्यवर—यथा-रीति मुरीद कर लीजिये," यह सुनकर शाह साहब आँखों में आँसू भर लाये, और बोले—"मुरीदी बड़ी कठिन हैं। लोगों ने इसको हँसी-खेल समझ लिया है। यथा-रीति मुरीद होते हैं, और यह नहीं जानते कि मुरीदी क्या होती है, तथा इसके क्या-क्या कर्तव्य हैं, जितनी ठोकरें तुमने आज तक खाई हैं, पग-पग पर उससे सहस्रगुणा अधिक कठोर परीक्षायें है।

बावा, यह मार्ग बड़ा कठिन है। फ़क़ीरी के मार्ग में हज़ारों ठोकरें हैं।

"आजकल के लोग सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये मुरीद होते हैं। किन्तु मुरीदी इसका नाम है कि सब इच्छायें तथा वासनाये मिटाकर पीर का पल्ला पकडे। यदि स्वयं इच्छाओं को नष्ट करने में असमर्थ रहे, तो पीर से यही प्रार्थना करे कि पहिले वह मानुषिक वासनाओं को नष्ट करे।

"मियाँ साहबजादे, फ़क़ीरी भी एक प्रकार का शासन है। जिस प्रकार बादशाहों को देश के प्रबन्ध के लिये योग्य कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है, फ़क़ीर-लोग भी हृदय-रूपी राज्य का शासन बुद्धिमान् मनुष्यों को सौंपा करते हैं। बहादुरशाह को अँग्रेज़ों से पराजय इसी कारण हुई कि उनके पास काम कर सकनेवाले आदमी न थे। अन्यथा ऐसी दशा में, जब कि सारे देश की सहानुभूति बादशाह के साथ थी, मुट्ठी-भर अँग्रेज़ क्या कर सकते थे? किन्तु अँग्रेज़ों की योग्यता तथा राज्य-प्रबन्ध की कुशलता ने उन्हें विजय दिलाई, और बादशाह हार गये। यही दशा फ़क़ीरी की है। वासना-रूपी दुश्मन दिन-रात मनुष्य की धर्म-रूपी सम्पत्ति लूटने पर उतारू रहता है, फ़क़ीर चित्तावरोध-द्वारा दुश्मनों को पराजित करके अपने बस में करते हैं। जब फ़क़ीरों में चित्तावरोध का गुण लुप्त हो जायगा, वासनायें सुगमता

से धर्म-रूपी मुकट तथा सिंहासन पर अधिकार जमा लेंगो। आजकल फ़क़ीर लोग अपने मार्ग से विचल गये हैं, इस कारण उनके अनुयायियों की दशा भी कुछ की कुछ हो गई है। तुमको चाहिये कि पहिले भली भाँति गुरु-शिष्य के कर्तव्य तथा कार्यों को समझ लो, इसके बाद शिष्य (मुरीद) होना।"

राजकुमारी की विपत्ति

होने को तो गदर पचास बरस की कहानी है, मगर मुझसे पूछो तो कल को-सी बात मालूम पड़ती है। उन दिनों मेरी आयु सोलह-सत्रह वर्ष की थी। मैं अपने भाई यावरशाह से दो बरस छोटी, और मरनेवाली बहन नाज़बानू से छः साल बड़ी हूँ। मेरा नाम सुलतानबानू है। मेरे पिता मिरज़ा दवेश बहादुर, पूज्यवर बहादुरशाह के लाड़ले बेटे थे।

भाई यावरशाह और हम बहनों में बड़ा प्रेम था। बस, एक दूसरे पर प्राण देता था। यावर भाई को कई उस्ताद भिन्न भिन्न शिक्षायें दिया करते थे। कोई हाफ़िज़ था, कोई मौलवी; कोई सुलेखक था, और कोई धनुर्विद्या-निपुण।

हम महल में सीना-पिरोना और क़सीदा काढ़ना मुग़लानियों से सीखते थे। जिन बच्चों तथा बड़ों पर पिताजी की विशेष कृपा-दृष्टि होती थी, उनको प्रात:काल का भोजन शाही दस्तरख़्वान पर बादशाह-सलामत के साथ खिलाया जाता था। पिताजी मुझको भी बहुत प्यार करते थे, और मैं सदैव प्रातःकाल के समय भोजन के लिए बुलाई जाती

थी। जब मैंने होश सँभाला, और चचा: अबूबकर के लड़के मिरज़ा सोहराब से मेरी मँगनी ठहर गई, तो मुझे बादशाह-सलामत के दस्तरख्वान पर जाते हुए लज्जा आने लगी; क्योंकि वहाँ मिरज़ा सोहराब भी खाना खाने आया करते थे। यद्यपि हमारे सारे कुटुम्ब में आपस में परदा न था, और न अब है, तथा बाहर के लोग भी घर में आया-जाया करते थे, किन्तु मैं अपनी प्रकृति से विवश थी। मैं ज़रा देर के लिये भी किसी गैर मर्द के सामने जाना पसन्द न करती थी। पर करती क्या? पूज्यवर की आज्ञा के विरुद्ध दस्तरख्वान पर किस प्रकार न जाती? किन्तु इतना ही बहुत था कि बादशाह के अदब से सब आँखें झुकाये रखते थे। साहस न था कि एक बच्चा भी इधर-उधर देखे, या ज़ोर से बोले।

यह नियम था कि जब बादशाह-सलामत कोई विशेष भोज्य-पदार्थ किसी को देते थे, तो वह, बच्चा हो या जवान, स्त्री हो या पुरुष—अपने स्थान से उठकर अभिवादन-स्थान पर जाता, और झुककर तीन बार प्रणाम करता था। एक दिन मेरे साथ भी यही बात हुई। पूज्यवर ने एक प्रकार का नवीन ईरानी खाना मुझको दिया, और बोले, "सुलताना—तू तो कुछ खाती ही नहीं। अदब-लिहाज़ एक सीमा तक अच्छा होता है, नकि इतना कि दस्तरख्वान पर से भूखा उठा जाय।" मैं खड़ी हुई, और अभिवादन-स्थान पर जाकर तीन बार प्रणाम किया। किन्तु न पूछो! इस कठिनता से

आँखों के सामने एक सिक्ख की संगीन का निशाना बन गया !" यह सुनते ही मैंने एक चीख मारी और 'हाय भाई यावर !' कहकर रोने लगी। वह घोड़े से उतरकर आये। मुझको और नाज़बानू को गले लगाकर प्यार किया, और सान्त्वना देने लगे। बोले—"बेटी, सब लोग मेरी खोज में हैं। मैं भी दो-चार घड़ी का मेहमान हूँ। तुम जवान और समझदार हो। अपनी छोटी बहन को सान्त्वना दो, और स्वयं आनेवाली आपत्तियों का धैर्य से सामना करो। मालूम नहीं, इसके बाद क्या होनेवाला है ! जी तो नहीं चाहता कि तुमको अकेला छोडकर कहीं जाऊँ, पर एक दिन तुमको बिना-बाप का बनाना पडेगा ही। नाज़बानू तो अभी बच्चा है। इसका दिल रखना। नेकी से जीवन व्यतीत करना। और देखो नाज़बानू, अब तुम राजकुमारी नहीं हो। किसी चीज़ के लिये हठ न करना। जो मिल जाय, धन्यवाद देकर खा लेना। यदि कोई मनुष्य कुछ खाता हो, तो आँख उठाकर न देखना। अन्यथा लोग कहेंगे कि राजकुमारियाँ बडी नदीदी होती हैं।" फिर हम दोनों को ख्वाजासरा के सुपुर्द करके कहा—"इनको जहाँ हमारे वंश के और मनुष्य हों, पहुँचा देना।" इसके बाद हमको प्यार किया, और रोते हुए घोड़ा दौड़ाते जंगल मे घुस गये। फिर पता न लगा कि वह क्या हुए।

ख्वाजासरा हमें ले चला। यह हमारे घर का पुराना

नौकर था। इस विपत्ति में नाज़बानू रोने लगी। मेरा भी जी भर आया, और उसको सान्त्वना देने लगी। ख्वाजासरा ने फिर कहा—"चलो बस हो चुका—जल्दी चलो।" नाज़बानू का स्वभाव ज़रा तेज़ था। वह नौकरों को सदैव बुरा-भला कह लिया करती थी, और ये लोग चुपचाप सुन लिया करते थे। इसी विचार से उसने ख्वाजासरा को फिर दो-एक बातें सुना दीं। कमबख्त को सुनते ही इतना क्रोध आया कि आपे से बाहर हो गया, और बड़ी बेदर्दी से बिन माँ-बाप की दुखिया बच्ची के एक तमाचा मारा। बानू बिलबिला गई। वह कभी फूल की छड़ी से भी न पिटी थी, या ऐसा तमाचा लगा।

उसके रोने से मेरे आँसू भी न रुके। हम तो रोते रहे, और ख्वाजासरा कहीं चला गया। फिर समाचार न मिला कि वह क्या हुआ। हम कठिनता से गिरते-पड़ते हज़रत निज़ामउद्दीन औलिया की दरगाह में पहुँचे। यहाँ दिल्ली के और हमारे ही कुटुम्ब के सैकड़ों मनुष्य थे। किन्तु प्रत्येक अपनी-अपनी आपत्ति मे फँसा था। प्रलय का दृश्य था। किसी ने बात तक न पूँछी। इसी बीच में बीमारी फैली, और प्यारी बहन नाज़बानू का परलोक-वास होगया। मैं अकेली रह गई। शान्ति हुई। तब भी मुझ दुखिया को सुख न मिला। अन्त में ईश्वर का करना ऐसा हुआ कि अङ्गरेज़-सरकार ने हम लोगों का पालन करना चाहा, और मेरा पाँच रुपये वार्षिक वज़ीफ़ा नियत हुआ, जो अब भी मिलता है।

दिल्ली के बादशाह के एक परिवार की कहानी

जब दिल्ली जीवित थी, तथा भारतवर्ष का हृदय कह-लाने की अधिकारिणी थी, और लाल क़िले पर तैमूरियों का अन्तिम चिन्ह लहरा रहा था, उन्हीं दिनों का ज़िक्र है कि मिरज़ा सलीम बहादुर, जो अबूजफर बहादुरशाह के भाई थे और ग़दर से पूर्व एक अचानक अपराध के कारण बन्दी होकर इलाहाबाद चले गये थे, अपने मरदाना मकान में बैठे हुए अपने इष्ट-मित्रों के साथ बेतकल्लुफ़ी की बातें कर रहे थे। इतने ही में घर से एक लौंडी बाहर आई और बोली कि आपको बेगम साहब याद कर रही हैं। मिरज़ा सलीम तत्काल महल में चले गये।

थोड़ी देर में महल से कुछ चिन्तित-से लौटे। यह देख-कर एक बेतकल्लुफ़ दोस्त ने पूछा—"ख़ैर तो है? आप चिन्तित-से क्यों हैं?" मिरज़ा ने हँसकर उत्तर दिया—"नहीं! कुछ नहीं! कभी-कभी माताजी यों-ही अप्रसन्न हो जाती हैं। कल सायंकाल को रोज़ा खोलने के समय नत्थनख़ाँ कुछ गाकर मेरा मनोरञ्जन कर रहा था। उस

समय माताजी .कुरान-शरीफ पढ़ा करती हैं। उनको यह कोलाहल अप्रिय मालूम हुआ। आज्ञा दी कि रमज़ान-शरीफ़ गाने-बजाने की महफ़िलें न हों।" भला मैं अपनी मनोरञ्जन-प्रिय प्रकृति को कैसे छोड़ सकता हूँ? उनकी मान-मर्यादा का विचार करके स्वीकार तो कर लिया, किन्तु इस आज्ञा-पालन से जी उचटता है। इसी सोच में हूँ कि यह सोलह दिन कैसे कटेंगे?"

मुसाहबों ने हाथ बाँधकर निवेदन किया—"हु.ज़ूर, यह भी कोई चिन्तित होने की बात है! सायंकाल को रोज़ा खोलने से पहले जामअ.-मसजिद पधारा कीजिये। अजब बहार होती है। रङ्ग-बिरङ्ग के आदमी तरह-तरह के जमघटे देखने में आयेंगे। .खुदा के दिन हैं। .खुदावालों की बहार भी देखिये।"

मिरज़ा ने इस सम्मति को पसन्द किया, और दूसरे दिन मुसाहबों के साथ लेकर जामअ.-मसजिद पहुँचे। वहाँ जाकर अद्भुत दृश्य देखा। जगह-जगह लोग घेरा बनाये बैठे हैं। कहीं .कुरान-शरीफ पढ़ा जा रहा है। रात को .कुरान सुनानेवाले हाफ़िज़ एक दूसरे को .कुरान सुना रहे हैं। कहीं धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद हो रहा है। दो विद्वान् किसी शास्त्रीय विषय पर विवाद कर रहे हैं, और बीसियों आदमी इधर-उधर बैठे आनन्द से सुन रहे हैं। किसी जगह कोई साहब वज़ीफ़ों में लगे हुए हैं। संक्षेप यह कि मसजिद में चारों ओर अल्लाह-वालों का जमघट है।

मिरज़ा को यह दृश्य बहुत रुचिकर हुआ, और समय बहुत आनन्द से कट गया। इतने में रोज़ा खोलने का समय निकट आया। सैकड़ो ख्वान अफ़तारी के आने लगे, और लोगो मे अफतारियाँ बाँटी जाने लगी। ख़ास बादशाही महल से बहुत से ख्वान बढ़िया पदार्थों से सुसज्जित करके प्रति दिन जामअ्-मसजिद मे जाते थे, जिससे रोज़ा रखने-वालो को अफ़तारी बाँटी जाय। इसके अतिरिक्त क़िले की सब बेगमें तथा शहर के सब रईस पृथक्-पृथक् अफ़तारी के सामान भेजते थे। इस कारण इन ख्वानों की गिनती सैकड़ो तक पहुँच जाती थी। प्रत्येक रईस इस बात का प्रयत्न करता था कि उसका अफ़तारी का सामान दूसरों से बढ़िया रहे। इस कारण ख्वान पर ढकने के रङ्ग-बिरङ्ग के रेशमी कपड़े और उनकी झालरे एक से एक बढ़कर होती थीं, और मसजिद मे उनकी अजब रौनक़ होजाती थी।

मिरज़ा के दिल पर इस धर्म-चर्चा तथा ऐश्वर्य ने बड़ा प्रभाव डाला। अब वह प्रति दिन मसजिद में आने लगे। घर-घर में वह देखते कि सहस्रों फ़कीरों को सहरी तथा आरम्भ-रात्रि का भोजन प्रति दिन शहर की ख़ान्क़ाहों और मसजिदों में भिजवाया जाता था, तथा रात-दिन के परिश्रम पर भी ये दिन उनके घर पर बड़ी बरकत तथा आनन्द के प्रतीत होते थे।

मिरज़ा सलीम के एक भान्जे, मिरज़ा शाहज़ोर अल्पा-

होने के कारण अपने मामू की संगति में बेतकल्लुफ सम्मिलित हुआ करते थे। उनका कहना है कि, एक तो वह समय था, जो अब स्वप्न के समान याद आता है, या एक वह समय आया कि दिल्ली उलट-पलट होगई। किला नष्ट कर दिया गया, अमीरों को फाँसियाँ मिल गईं, उनके घर उजड़ गये, उनकी बेगमें दासियों का काम करने लगीं,—मुसल्मानों का सब ऐश्वर्य मिट्टी में मिल गया।

इसके बाद एक बार रमज़ान-शरीफ़ के मास में जामअ्-मसजिद जाने का अवसर हुआ। क्या देखता हूँ कि जगह-जगह चूल्हे बने हुए हैं। सिपाही रोटियाँ पका रहे हैं। घोड़ो के दाने दले जा रहे हैं। घास के ढेर लगे हुए हैं। शाहजहाँ की सुन्दर तथा अद्वितीय मसजिद अस्तबल दिखाई देती है। फिर जब मसजिद को सरकार ने मुसलमानों के सुपुर्द कर दिया, तो रमज़ान ही के महीने में फिर जाना हुआ। देखा कुछ मुसलमान मैले-कुचैले पैवन्द लगे कपड़े पहने बैठे हैं। दो-चार क़ुरान-शरीफ़ पढ़ रहे हैं। कुछ इसी विकलता की दशा में वज़ीफे पढ़ रहे हैं। अफ़तारी के समय कुछ मनुष्यों ने खजूर और दाल-सेव बाँट दिये। किसी ने तरकारी के चन्दे बाँट दिये। न वह पहला-सा समाँ, न पहली-सी रौनक, न पहला-सा ऐश्वर्य। यह प्रतीत होता था कि बिचारे मुसीबत के मारे कुछ आदमी एकत्रित हो गये हैं।

इसके बाद आजकल का समय भी देखा, जब कि मुस-

लमान चारो ओर से दब गये हैं। अँग्रेजी-शिक्षित मुसल-मान तो मसजिद में दीखते ही कम हैं, दीन-मलीन आये तो उनसे रौनक क्या ख़ाक हो सकती है! फिर भी, इतना ही बहुत है कि मसजिद आबाद है। यदि मुसलमानो के दारिद्र्य की यही हालत रही, तो मालूम नही कि भविष्य में क्या दशा हो!

मिरज़ा शहज़ोर की बातों में बड़ा दर्द तथा प्रभाव था। एक दिन मैंने उनसे गदर की कहानी, और विनाश का वृत्तान्त सुनना चाहा। आँखो में आँसू भर लाये। उसके वर्णन करने मे विवशता प्रकट करने लगे। किन्तु जब मैंने अधिक ज़ोर दिया, तो अपनी दु:ख-भरी कहानी इस प्रकार सुनाई:—

"जब अँग्रेजी तोपों ने, किरचों और सङ्गीनों ने, राज-नैतिक चालों ने हमारे हाथ से तलवार छीन ली, सर से मुकुट उतार लिया, सिंहासन पर अधिकार कर लिया, आग के गोलों का मेह बरस चुका, सात परदों में रहने-वालियाँ बे-चादर होकर बाज़ार में अपने वारिसो की तड़पती लाशों को देखने निकल आईं, छोटे बिन-बाप के बच्चे अल्लाह-अल्लाह पुकारते हुए असहाय फिरने लगे, हम सब के सहारे बहादुरशाह क़िला छोड़कर बाहर निकल गए, उस समय मैंने भी अपनी वृद्धा माता, अल्पायु भगिनी तथा गर्भवती स्त्री को साथ लेकर घर से कूच किया।"

"हम लोग दो रथो में सवार थे। सीधे गाजियाबाद की ओर चले। किन्तु बाद में मालूम हुआ कि इस मार्ग में

अँग्रेज़ी फ़ौज़ का पड़ाव पड़ा हुआ है। इसलिये शाहदरे से लौटकर कुतुब-साहब चले। वहाँ पहुँचकर रात को विश्राम किया। इसके बाद प्रात:काल आगे चले। छतरपुर के निकट गूजरों ने आक्रमण किया, और माल-असबाब लूट लिया। किन्तु इतनी कृपा की कि हमको जीवित छोड़ दिया। वह बियाबान जङ्गल और तीन स्त्रियों का साथ। स्त्रियाँ भी कैसी ? एक बुढ़ापे से लाचार, दो पग चलन [illegible] री रोग-ग्रसित तथा गर्भवती, कभी पैदल चलने का अवसर नहीं हुआ, तीसरी दस वर्ष की अज्ञान लड़की। स्त्रियाँ रोती थीं—उनके रोने से मेरा कलेजा फटा जाता था। माताजी कहती थी—'ईश्वर, हम कहाँ जायें ? किसका सहारा ढूँढें ? हमारा ताज तथा सिंहासन लुट गया। तू टूटा बोरिया तथा शान्ति का स्थान तो दे। इस बीमार पेटवाली को कहाँ लेकर बैठूँ ? इस नन्हीं बच्ची को किसके सुपुर्द करूँ ? जङ्गल के वृक्ष भी हमारे दुश्मन हैं। कहीं साया दिखाई नहीं देता।" बहन की यह दशा थी कि वह डरी हुई खड़ी थी, और हम सब का मुँह ताकती थी। मुझको इस नन्हीं-बच्ची की असहाय दशा पर बड़ा तरस आता था। अन्त में विवश होकर मैंने स्त्रियों को सान्त्वना दी, तथा आगे चलने की हिम्मत बँधाई।

"बिचारी स्त्रियों ने चलना आरम्भ किया। माताजी पग-पग पर ठोकरे खाती थीं, और सर पकड़कर बैठ जाती थीं। जब वह यह कहतीं—'भाग्य उनको ठोकरे खिलवाता

है जो बादशाहों के ठोकरें मारते थे। भाग्य ने उनको असहाय कर दिया, जो असहायों के काम आते थे। हम चंगेज़ की नस्ल हैं, जिसकी तलवार से पृथ्वी काँपती थी। हम तैमूर की सन्तति हैं, जो मुल्कों का मालिक और बादशाह था। हम शाहजहाँ के घरवाले हैं, जिसने एक क़ब्र पर जवाहिर की बहार दिखादी, तथा संसार में अद्वितीय मसजिद दिल्ली के अन्दर बनवादी। हम हिन्दुस्तान के महाराजाधिराज के कुनबे में हैं। हम मानवाले थे, हम ऐश्वर्यवाले थे। पृथ्वी में हमे क्यो ठिकाना नहीं मिलता? वह क्यों विरोध करती है? आज हम पर आपत्ति है। आज हम पर आकाश रोता है, तो शरीर पर रोंगटे खड़े होते जाते थे।'

"संक्षेप यह, बड़ी कठिनता से गिरते-पड़ते गाँव में पहुँचे। वह गाँव मुसल्मान मेवातियो का था। उन्होंने हमारी सुश्रूषा की और अपनी चौपाल में हमको ठहरा दिया।

"कुछ दिनों तो इन मुसलमान गँवारों ने हमारे खाने-पीने का ध्यान रक्खा और चौपाल में हमको ठहराए रक्खा, किन्तु कब तक ये लोग ऐसा कर सकते थे? अन्त में उकता गये। एक दिन मुझसे कहने लगे—'मियाँजी, चौपाल में एक बारात आनेवाली है। तू दूसरे छप्पर में चला जा। और रात-दिन ठाली बैठा के करे है? कुछ काम क्यों नहीं करता?' मैंने कहा, 'भाई, जहाँ तुम कहोगे, वहीं जा पड़ेंगे। हमें चौपाल में रहने की इच्छा नहीं है। जब भाग्य ने बड़े-

बड़े महल छीन लिए तो इस कच्चे मकान पर हम क्या हठ करेंगे ! और रही काम करने की बात—सो मेरा जी तो खुद घबराता है। खाली बैठे बैठे तबियत उकताई जाती है। मुझे कोई काम बताओ। हो सकेगा, तो सर आँखों से करूँगा।' उनका चौधरी बोला—'हमने के बेरा के तू के काम कर सके है ?'

"मैंने उत्तर दिया, 'मैं सिपाही का लड़का हूँ। तीर-तलवार चलाना मेरा हुनर है। इसके अतिरिक्त और कोई काम नहीं जानता।'

"गँवार हँसकर कहने लगे—'ना बाबा ! यहाँ तो हल चलाना होगा। घास खोदनी पड़ेगी। हमने तलवार के हुनर के करने हैं ?'

"गँवारों के उत्तर से मेरी आँखों मे आँसू आगये और उत्तर दिया—'भाइयो, मुझको तो हल चलाना और घास खोदनी नहीं आती।'

"मुझको रोता देखकर गँवारो को दया आगई और बोले, 'अच्छा, हमारे खेत की रखवाली किया कर, और तेरी औरते हमारे गाँव के कपडे सी दिया करें। फ़सल पर तुझको नाज दे दिया करेंगे, जो तुझको बरस दिन को काफ़ी होगा।'

"अतएव ऐसा ही हुआ। मैं सारा दिन खेत पर जानवर उड़ाया करता था, और घर की स्त्रियाँ कपडे

सीती थीं। एक बार ऐसा हुआ कि भादों का महीना आया, और गाँव में सब को ज्वर आने लगा। मेरी स्त्री और बहन को भी ज्वर ने आ दबाया। वह ठहरा गाँव, वहाँ दवा और हकीम का क्या काम ? खुद लोट-पीटकर अच्छे होजाते हैं। किंतु हमको दवाओं की आदत थी। बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। इसी दशा में एक दिन बड़े ज़ोर की वर्षा हुई। जङ्गल का नाला चढ़ आया, और गाँव में कमर-कमर पानी होगया। गाँववालों को तो इन सब आपत्तियों को सहन करने की आदत थी, किंतु हमारी दशा इस तूफान के कारण मृत्यु से भी बुरी होगई। पानी एक बार ही रात के समय घुस आया था। इस कारण हमारी औरतों की चारपाइयाँ बिल्कुल डूब गईं, और वे चिल्लाकर रोने लगीं। अन्त में बड़ी कठिनता से छप्पर की बल्लियों पर दो चारपाइयाँ उठाकर औरतों को उन पर बिठाया। पानी घंटे-भर मे उतर गया, किंतु दुःख यह हुआ कि खाने के नाज और ओढ़ने-बिछाने के कपड़े भिगो गया। पिछली रात मेरी पत्नी के दर्द आरम्भ हुआ, और साथ ही जाड़े से ज्वर भी आया। इस समय की आकुलता बस वर्णन करने योग्य नहीं। अन्धेरा घुप, मेंह की झड़ी, कपड़े सब गीले, आग का सामान भी असम्भव। आश्चर्य में थे कि हे ईश्वर ! क्या प्रबन्ध किया जाय। दर्द बढ़ना आरम्भ हुआ तथा रोगी की दशा बहुत खराब

होगई । यहाँ तक कि तडपने लगी, और तड़पते-तडपते जान देदी । बच्चा पेट ही में रहा ।

"वह सारी आयु आराम मे पली थी। गदर की आपत्तियें ही उसकी जान लेने के लिये काफी थीं । किन्तु उस समय तो जान बच गई । यह बाद का झटका ऐसा बडा लगा, कि जान लेकर गया ।

"सुबह हो गई। गाँववालो को ख़बर हुई तो उन्होंने कफन वगैरह मँगाया, और दोपहर तक यह अनाथ राज-कुमारी क़ब्रिस्तान में सदैव के लिए जा सोई ।

"अब हमको खाने की चिन्ता हुई, क्योंकि नाज सब भीगकर सड गया था। गाँववालो से माँगते हुए लज्जा आती थी । वे भी हमारी तरह इसी मुसीबत में फँसे थे ।

"फिर भी बिचारे गाँव के चौधरी को खुद ही ख़याल हुआ, और उसने कुतब साहब से एक रुपये का आटा मँगवा दिया। वह आटा आधे के क़रीब ख़र्च हुआ होगा कि रमज़ान-शरीफ का चाँद दिखाई दिया। माताजी का हृदय बहुत कोमल था। वह प्रत्येक समय पिछले समय को याद किया करती थी। रमज़ान का चाँद देखकर एक ठण्डी साँस भरी, और चुप होगईं । मैं समझ गया कि इनको अगला वक़्त याद आगया है। सान्त्वना की बाते करने लगा, जिनसे उनको कुछ ढाढस हो गई ।

"चार-पाँच दिन तो आराम के साथ कट गये, किन्तु

जब आटा निमट चुका तो, बड़ी मुश्किल सामने आई। कहते हुए लज्जा आती थी, और पास एक कौडी न थी। शाम को पानी से रोज़ा खोला। भूख के मारे कलेजा मुँह को आता था।

"माताजी का स्वभाव था कि इस प्रकार के कष्ट के समय अगले वक़्तो का ज़िक्र करके बहुत रोया करती थीं। किन्तु आज वह चुप थीं। उनकी मौन-शान्ति से मेरे दिल को भी सहारा हुआ, और छोटी बहन को, जिसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी, सान्त्वना देने लगा। वह बेचारी भी मेरे समझाने से निढाल होकर चारपाई पर जा पड़ी, और थोड़ी देर में सोगई। भूख में नींद कहाँ आती है? बस, एक ग़ोता-सा था।

"इसी गोते और कमज़ोरी की हालत में सहरी का समय आगया। माताजी उठीं और तहज्जुद की नमाज़* के बाद जिन हृदय-विदारक शब्दों में उन्होंने प्रार्थना माँगी, उनका दोहराना कठिन है। संक्षेप यह कि उन्होंने कहा—'भगवन्, हमने ऐसा क्या अपराध किया है, जिसका यह दण्ड मिल रहा है। रमज़ान के महीने में हमारे घर से सैकड़ों मोहताजों को खाना मिलता था, आज हम स्वयं दाने-दाने के मोहताज हैं, और व्रत पर व्रत रखते हैं। भगवान्! यदि उनसे

* तहज्जुद की नमाज़, उस नमाज़ को कहते हैं कि जिसको साधु लोग आधी रात के बाद नींद से उठकर पढ़ते हैं।

अपराध हुआ तो इस निरपराध बच्चे ने क्या अपराध किया है, जिसके मुँह में कल से एक खील उड़कर नहीं गई? दूसरा दिन भी यों-ही बीत गया, और निराहार रोज़े पर रोज़ा रक्खा। सायंकाल के समय चौधरी का आदमी दूध और मीठे चावल लाया, और बोला—'आज हमारे यहाँ नयाज़ थी। यह उसका खाना है, और ये पाँच रुपये ज़िकवे* के हैं। प्रति वर्ष ज़िकवे में बकरी दिया करते हैं, किन्तु अब के नक़द दे दिया है।'

"यह खाना और रुपये मुझको ऐसी सम्पत्ति मालूम हुई, मानो राज्य मिल गया। खुशी-खुशी माता के आगे सारा वृत्तान्त सुना दिया। कहता जाता था और ईश्वर का धन्यवाद भेजता जाता था। किन्तु यह पता न था कि समय के परिवर्तन ने मर्द के विचार पर तो प्रभाव डाल दिया है, किन्तु औरत की ज़ात जूँ की तूँ अपनी प्राचीन मर्यादा पर स्थित है।'

"अतएव मैंने देखा कि माता के चेहरे का रङ्ग बदल गया। निराहार के कारण अशक्त होने पर भी उन्होंने त्योरी बदलकर कहा, 'धिक है तुझको! दान और ज़कवा लेकर आया है, और प्रसन्न होता है! अरे, इस से मर जाना अच्छा था। यद्यपि हम मिट गये, किन्तु हमारी गर्मी नहीं मिटी है। मैदान में निकलकर मर जाना या मार डालना और तलवार

* वार्षिक आय का चालीसवाँ भाग, जिसे ईश्वर के नाम पर देना मुसल्मानों का धार्मिक कर्तव्य है।

के ज़ोर-से रोटी लेना हमारा काम है—दान लेना हमारा काम नहीं।'

"माता की इन बातों से मुझे पसीना आ गया, और लज्जा के कारण हाथ-पाँव ठण्डे हो गये। चाहा कि उठकर ये चीज़ें वापिस कर आऊँ। किन्तु माता ने रोका, और कहा—'ईश्वर ही को यह मंज़ूर है, तो हम क्या करें। सब-कुछ सहना पड़ेगा।' यह कहकर खाना रख लिया, और रोज़ा खोलने के बाद हम सब ने मिलकर खा लिया। पाँच रुपये का आटा मँगवा लिया, जिससे रमज़ान भली भाँति बीत गया।

"इसके बाद छः महीने गाँव में और रहे। फिर दिल्ली चले आये। यहाँ आकर माता का तो परलोक-वास होगया, और बहन का विवाह कर दिया। अँग्रेज़ी सरकार ने पाँच रुपये मासिक पेन्शन नियत करदी, जिस पर आजकल जीवन का निर्वाह है।"

भिखारी राजकुमार

दिल्ली की जामअ्-मसजिद से जो रास्ता मटिया-महल और चितली कब्र होता हुआ दिल्ली-दरवाजे की ओर गया है, वहाँ एक मौहल्ला 'कल्लू खवास की हवेली' के नाम से प्रसिद्ध है, इस मौहल्ले से प्रति दिन रात्रि का अन्धकार होने के पश्चात् एक भिखारी बाहर आता है, और जामअ्-मसजिद तक जाता है, फिर यहाँ स वापिस चला आता है। इस फकीर का क़द बहुत लम्बा है। शरीर दुबला है। डाढ़ी शानदार और सफ़ेद है, गाल पिचके हुए हैं। टूटी हुई जूतियाँ, जिनको लीतड़े कहना चाहिये, पैरो में हैं। कुरता बहुत मैला है, और उसमें भी दस-बारह पैवन्द हैं। सर पर पट्टे हैं, किन्तु बाल बहुत उलझे हुए हैं। फटी हुई एक टोपी सर पर है। भिखारी के एक हाथ में बाँस की ऊँची-सी लकड़ी है, और एक हाथ में मिट्टी का प्याला है, जिसका एक किनारा टूटा हुआ है। भिखारी के चेहरे से मालूम होता है कि वह या तो चण्डू पीता है, या कई महीने की बीमारी के बाद आज ही उठा है, क्योंकि चेहरे पर पीलापन छाया हुआ है। जब चलता है, तो

दाँये पाँव को घसीटकर पैर उठाता है। शायद इसे कभी फ़ालिज मार गया होगा।

इसकी आवाज़ बहुत ऊँची तथा हृदय-विदारक है। जब वह निराशापूर्ण ऊँची आवाज़ मे कहता है—"या अल्लाह, एक पैसे का आटा दिलवादे। तू ही देगा। तू ही दिलवायेगा, एक पैसे का आटा दिलवादे।"—तो वे सब मनुष्य, जो बाज़ार या बाज़ार के निकट रहते हैं, इन हृदय-विदारक शब्दो से प्रभावान्वित हो जाते हैं, यद्यपि उन मनुष्यों मे से दो-चार को छोड़कर, कोई भी यह नहीं जानता कि यह भिखारी कौन है, और उसके शब्द इतने हृदय-विदारक क्यों हैं। कुछ घरो की स्त्रियाँ तो यह कहने लगती हैं कि शाम हुई और यह मनहूस आवाज़ कानों मे आई। जब यह आवाज़ सुनती हैं, हमारा कलेजा टूक-टूक हो जाता है—न मालूम कौन भिखारी है, जो सदैव रात्रि ही के समय भीख माँगने निकलता है; दिन को कभी इसकी आवाज़ नहीं आती। भिखारी जब कल्लू ख़वास की हवेली से बाजार में आता है, तो फ़ालिज मारे हुए अपने सीधे पाँव को खींचता हुआ, टूटे हुए लीतड़ों से धूल उड़ाता हुआ, लकड़ी टेकता हुआ, धीरे-धीरे सीधा जामअ-मसजिद की ओर चला जाता है। एक-एक मिनट के बाद उसके मुँह से बस यह आवाज़ निकलती है, "या अल्लाह, एक पैसे का आटा दिलवादे। तू ही देगा, तू ही दिलवायेगा।"

भिखारी किसी दुकान पर, या किसी मनुष्य के सामने नहीं ठहरता, सीधा चलता रहता है। यदि किसी रास्ता चलनेवाले को या दुकानदार को दया आगई, और उसने फ़क़ीर के प्याले मे पैसा डाल दिया, या आटा या खाने की कुछ और चीज़ दे दी, तो फ़क़ीर बस इतना कहता है, "भला हो बाबा। ख़ुदा तुमको बुरे दिन न दिखाये", और आगे बढ़ जाता है। आँखों से दिखाई न देने के कारण वह देख ही नहीं सकता कि उसको दान देनेवाला कौन था। जामअ-मसजिद से लौटते समय भी भिखारी यही आवाज़ लगाता हुआ कल्लू ख़वास को हवेली में आ जाता है। इस हवेली में निर्धन मुसलमानों के अलग-अलग बहुत-से छोटे-छोटे मकान हैं। इन्हीं मकनों में-से एक बहुत ही छोटा और टूटा-फूटा मकान इस फ़क़ीर का भी है। घर के दरवाज़े पर लौटता है, तो किवाड़ों की लगी हुई कुण्डी खोलकर अन्दर जाता है। इस मकान मे केवल एक दालान, एक कोठड़ी, एक पाख़ाना और एक छोटा-सा आँगन है। दालान मे एक टूटी हुई चारपाई है, और फ़र्श पर एक फटा हुआ कम्बल बिछा हुआ है।

दिल्लीवालों को मालूम ही नहीं कि यह भिखारी कौन है। बस, दो-चार जाननेवाले जानते हैं कि यह बादशाह का नाती है, और इसका नाम मिरज़ा क़मरसुलतान है। गदर से पहले ख़ूब जवान था, और क़िले मे इसके सौन्दर्य की

बड़ी धूम थी। घोड़े पर सवार होकर निकलता था, तो किले की स्त्रियाँ और दिल्ली के बाजारवाले रास्ता चलते-चलते खड़े हो जाते थे। उसके सौन्दर्य को देखते थे, और झुक-झुककर सलाम करते थे। या आज यह समय है कि ग़दर सन् १८५७ ई० की क्रान्ति ने भिखारी बना दिया। गवर्नमेंट ने पाँच रुपया मासिक पेन्शन नियत की थी, किन्तु फ़िजूल-खर्ची के कारण वह भी बनिये के यहाँ बन्धक होगई। अब रात को भीख माँगने के लिये निकलता है, और जो-कुछ मिल जाता है, उससे दोनों समय के खाने का काम चलाता है।

किसी ने पूछा—"मिरज़ा, तुम दिन को बाहर क्यों नहीं निकलते?" राजकुमार क़मरसुलतान ने उत्तर दिया—"जिन बाज़ारों में मेरे सौन्दर्य और मेरी शानदार सवारी की धूम मचा करती थी, उन बाजारों में इस बुरी दशा में दिन के समय निकलते हुए लज्जा आती है, अतएव रात को निकलता हूँ, और केवल ईश्वर से माँगता हूँ। ईश्वर ही के आगे हाथ फैलाता हूँ, और वही मुझे देता है।"

फिर किसी ने कहा, "मिरज़ा, क्या अफ़ीम की भी आदत है?" राजकुमार कमरसुलतान ने उत्तर दिया, "जी हाँ, बुरी संगत के कारण अफ़ीम की भी आदत पड़ गई। कभी-कभी चण्डू भी पी लेता हूँ।" फिर पूछा गया—"ग़दर से लेकर आज तक तुम पर क्या गुज़री? ज़रा इसका हाल

भी सुनाओ।" मिरज़ा कमरसुलतान एक ठण्डा साँस लेकर चुप होगये, और कुछ देर के बाद बोले—"कुछ न पूछो, स्वप्न देख रहा था, आँख खुल गई। अब जाग रहा हूँ। वह स्वप्न फिर कभी नहीं दिखाई दिया, और न उसके दिखाई देने की आशा है।"

कई वर्ष हुए, राजकुमार मिरज़ा क़मरसुलतान का परलोकवास होगया।

राजवंश का एक परिवार

एक बार दिल्ली मे सर्दी ऐसे कड़ाके की पड़ रही थी कि घरों में बरतनों का पानी तक जम जाता था। यह दशा के देखकर एक दिन मैंने सोचा कि अपने निर्धन भाइयों की दशा मालूम करनी चाहिये कि आजकल उन पर क्या बीत रही है। इस कारण दिल्ली गया, और अपने एक निर्धन मित्र के मकान पर ठहरा, जिसके चारों ओर धनहीन राजकुमार रहते हैं। इस घर की दीवार के निकट एक छोटा-सा झोपड़ा था, और इसमें एक राजवश का परिवार रहता था।

मैंने सुना कि यह राजकुमार सदर बाजार में किसी मुसल्मान सौदागर के यहाँ नौकर थे, किन्तु आजकल बेकार हैं, क्योंकि वह सौदागर कलकत्ते चला गया है, और बुढ़ापे के कारण इनको रखना नहीं चाहता। बेचारे के तीन छोटे-छोटे लडके और एक अठारह वर्ष की लडकी है। लडकी का ब्याह हो गया है, किन्तु पति के बदचलन होने के कारण, माँ-बाप के घुटने से लगी जवानी के दिन काट रही है।

मुझको एक ऐसे स्थान पर बैठा दिया गया, जहाँ दीवार में एक बड़ा छेद था, और निर्धन राजकुमार का घर साफ़ दिखाई देता था।

छोटा-सा दालान और एक कोठरी, और सामने खुला हुआ साफ़ आँगन। दालान में सुघड़ और चतुर राजकुमारी ने खजूर के बोरियों का फ़र्श बिछा रक्खा था। कोठडी के अन्दर कुछ रक्खा हो, तो मालूम नहीं, सामने दालान में तो कुछ दिखाई नहीं दिया। हाँ, कोने में सैकड़ों पैवन्द लगी हुई गूदड़ा रक्खी थी, और उससे ज़रा इधर को एक पुराना फटा हुआ कम्बल ओढ़े हुए तीन बच्चे बैठे थे। राजकुमारी स्वयं बाजरे की रोटी पका रही थी, और लड़की सिल पर चटनी पीस रही थी।

इतने में एक बच्चा बोला—"लाओ, बाजीजान, चटनी लाओ। देखो, रोटी ठण्डी हुई जाती है।" यह सुनकर लड़की ने जल्दी-जल्दी चटनी समेटी, और बच्चों के आगे एक प्याली में रखदी। बच्चे बाजरे की रोटी खाने लगे। इतने ही मे राजकुमार आगये। एक मैली-सी दुलाई ओढ़े हुए थे। दालान मे दीवार से लगकर चुपचाप बैठ गये।

लड़की बोली—"क्यों अब्बाजान! कुशल तो है? आप उदास क्यों बैठे हैं?"

यह सुनकर राजकुमार ने गरदन उठाई, और उत्तर दिया—'कुछ नहीं, ख़ैरसल्ला है। आज तमाम दिन लोगों की

सलामी और खुशामद में चला गया, किन्तु कहीं भरोसे की नौकरी न हुई, जहाँ दो रोटी का सहारा होता। विवश होकर घर को वापिस आ रहा था। सामने से योग्य दामाद साहब को पुलिस की संरक्षकता में हथकड़ियाँ पहने जाते देखा। पूछने से मालूम हुआ कि किसी बाज़ारी औरत की नाक काट ली थी। यह सुनकर और देखकर और भी दुःख हुआ। जब मौहल्ले मे आया, तो बनिये ने, जिससे सौदा उधार आता है. तक़ाज़ा किया और इतना कहा कि जी को बहुत बुरा मालूम हुआ। अब इस चिन्ता मे बैठा हूँ कि क्या करूँ। सरदी ने अलग सता रक्खा है, नौकरी की यह दशा है, और सब से बढ़कर तेरा जलापा है। मुझे तो ईश्वर संसार से उठाले, जिससे उन आपत्तियों से मुक्ति पाऊँ।"

इतना कहकर राजकुमार ने गरदन झुकाली। मैंने देखा कि अभागी लड़की पर इस का बुरा प्रभाव पड़ा। उस-की आँखें झुक गईं, और आँसू टप-टप गिरने लगे। इस समय इस उजड़े घराने का हृदय-विदारक था, और युवा लड़की की निस्सहायावस्था ने ससारिक सुख-दुःख का चित्र खींच दिया था। खाने से निबटकर सोने का सामान किया गया। तीनों लड़के और एक लड़की बराबर लेट गये, और राजकुमारी ने ऊपर से वही गूदड़ी, जो कोने में रक्खी थी, आड़ी उढ़ा दी बच्चे तो छोटा क़द होने के कारण उस चौड़ान में ढक गये, किन्तु लड़की के पैर पिण्डलियो तक

खुले रहे। इस कारण उस बेचारी ने पैरों को समेट लिया, और गठड़ी बनकर पड़ गई।

राजकुमार उसी पतली-सी दुलाई में सुकड़कर लम्बे होगये, जो दिन को ओढ़े फिरते थे, राजकुमारी ने वह पुराना कम्बल ओढ़ा, जिसको बच्चों के पास देखा था। इस शान से यह राजवंश का परिवार नींद के मज़े लेने लगा।

दिल्ली के अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह की लाड़ली बेटी

कुलसूम ज़मानी बेगम की दुःख-भरी कहानी

(उन्हीं की ज़बानी)

जिस समय मेरे पिता का शासन समाप्त हुआ, तथा सिंहासन और छत्र लुटने का समय निकट आया, तो दिल्ली के लाल किले में एक कोहराम मचा हुआ था। प्रत्येक द्वार तथा दीवार से निराशा टपकती थी। उजले-उजले संगमरमर के मकान काने दिखाई देते थे। तीन वक़्त से किसी ने कुछ न खाया था। ज़ीनत, जो मेरी गोद में तीन वर्ष की बच्ची थी, दूध के लिये बिलकती थी। चिन्ता के कारण न मेरे दूध रहा था, न किसी धाय के। इसी निराशा की दशा में बैठे थे कि बादशाह-सलामत का ख़ास ख़्वाजासरा हमको बुलाने आया। आधी रात का समय था, चारों ओर निस्तब्धता का राज्य था। आज्ञा मिलते ही हम बादशाह-सलामत के पास चल दिये। बादशाह-सलामत प्रार्थना-स्थान पर बैठे हुए थे।

माला हाथ मे थी। जब मैं सामने पहुँची, झुककर तीन बार प्रणाम किया। बादशाह-सलामत ने बड़े प्यार से पास बुलाया, और बोले—"कलसूम, लो अब तुमको ईश्वर को सौंपा। भाग्य में है तो फिर देख लेंगे। तुम अपने पति को लेकर तत्काल कहीं चली जाओ। मैं भी जाता हूँ। जी तो नहीं चाहता कि इस अन्तिम समय तुम बच्चों को अपनी आँख से ओझल होने दूँ, किन्तु क्या करूँ?—साथ रखने मे तुम पर अपत्ति आने का खटका है। अलग रहोगी, तो शायद ईश्वर कोई भलाई का ढङ्ग करदे।"

इतना कहकर बादशाह-सलामत ने अपने पवित्र हाथ, जो बुढ़ापे के कारण काँप रहे थे, प्रार्थना के लिये ऊँचे किये। देर तक उच्च ध्वनि से प्रार्थना करते रहे—"भगवान्, ये अनाथ बच्चे तुझे सौंपता हूँ। ये महलों में रहनेवाले जङ्गलों म जाते हैं। ससार मे इनका कोई सहायक नहीं। तैमूर के नाम की लज्जा रखियो, तथा इन असहाय स्त्रियों का मान बचाइयो। भगवन्! यही नहीं,—प्रत्युत् भारतवर्ष के हिन्दू-मुसल्मान मेरी सन्तान हैं। आजकल सब पर मुसीबत छाई हुई है। मेरे दुष्कर्मों के कारण इनको अपमानित न कर, तथा सब आपत्तियों से वचा।"

इसके बाद मेरे सर पर हाथ रक्खा, जीनत को प्यार किया और मेरे पति को कुछ हीरे देकर, नूरमहल को भी, जो बादसाह-सलामत की बेगम थीं, साथ कर दिया।

पिछली रात को हम सब क़िले से बाहर निकले। हम सब मिलाकर पाँच जने थे—दो मर्द और तीन औरते। मर्दों में एक मेरे पति मिर्ज़ा ज़ियाउद्दीन और दूसरे बादशाह के बहनोई मिरज़ा उमरसुलतान थे, औरतों मे एक मैं, दूसरी बेगम नूरमहल और तीसरी बादशाह की समधन हाफ़िज़ा। जिस समय हम लोग रथ मे सवार होने लगे, सूर्योदय का समय था, तारे सब छिप गये थे, केवल प्रात-काल का तारा झिलमिला रहा था। हमने अपने भरे-पूरे घर तथा बादशाही महल पर अन्तिम दृष्टि डाली, तो दिल भर आया, और आसू उमड़ने लगे। बेगम नूरमहल की आँखो में भी आँसू भरे हुए थे, और पलके उनके बोझ मे काँप रही थीं।

अन्त में लाल क़िले से सदैव के लिये जुदा होकर कुराली गाँव मे पहुँचे, और अपने रथवान के यहाँ ठहरे। बाजरे की रोटी और छाछ खानेको मिली। इस समय भूखमे ये चीजे बिर-यानी और मुतञ्जन* से भी अधिक स्वादिष्ट मालूम दीं। एक दिन-रात तो शान्ति से व्यतीत हुआ, किन्तु दूसरे दिन आस-पास के जाट-गूजर जमा होकर कुराली को लूटने चढ आये। सैकड़ों औरते भी उनके साथ थीं, जो चिड़ियों के समान हम लोगो को चिपट गई। तमाम ज़ेवर व कपडे इन लोगों ने उतार लिये। जिस समय ये सड़ी-बुसी औरते

*मुसलमानों के स्वादिष्ट भोजनो के नाम।

मो-टेमोटे मैले हाथों से हमारे गालों को नोचती थीं, तो उनके लहँगों से ऐसी बू आती थी कि दम घुटने लगता था।

इस लूट के बाद हमारे पास इतना न बचा, जो एक समय की रोटी को भी यथेष्ट हो सकता। इसी सोच में थे कि देखिये—अब आगे क्या होगा। जीनत प्यास के मारे रो रही थी। सामने से एक जमींदार निकला। मैंने विवश होकर आवाज दी—"भाई, थोड़ा पानी इस बच्चे को ला दे।" जमींदार तत्काल एक मिट्टी के बरतन में पानी लाया, और बोला—"आज से तू मेरी बहन और मैं तेरा भाई।" यह जमींदार कुराली का खाता-पीता आदमी था। इसका नाम बसती था। इसने अपनी बैलगाड़ी तैयार करके हमको सवार किया, और पूछा—"जहाँ तुम कहो पहुँचा दूँ।" हमने कहा—"अजाड़ा, जिला मेरठ, में शाही हकीम मीर फ़ैजअली रहते हैं। वहाँ ले चल।" बसती हमको अजाड़ा ले गया। किन्तु मीर फैजअली ने ऐसी बे मुरव्वती का का बर्ताव किया जिसकी कुछ सीमा नहीं। साफ कानों पर हाथ रख लिया और कह दिया—"मैं तुम लोगों को रखकर अपना घर-बार नष्ट करना नहीं चाहता।"

वह समय बड़ी निराशा का था। पृथ्वी-आकाश में कहीं ठिकाना नहीं दीखता था। एक तो यह डर कि पीछे से अङ्गरेजी फौज न आती हो, दूसरे पास छदाम नहीं। प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि फिरी हुई थी। वे ही मनुष्य, जो

हमारी आँखों के इशारों पर चलते थे, और हर समय देखते रहते थे कि जो आज्ञा मिले, तत्काल हम उसको पूरा करें, आज हमारी सूरत से घृणा करते थे। शाबाश है बसती के जमीदार को, कि उसने मुँह से वह न कहे-को अन्त तक निबाहा, और हमारा साथ न छोड़ा। विवश होकर अजाड़े से हैदराबाद की ओर चल दिये। औरतें बसतो को गाडी में बैठी थी, और मर्द पैदल चल रहे थे। तीसरे दिन एक नदी-किनारे पहुँचे, जहाँ कोयल के नवाब की फ़ौज पडी हुई थी। उन्होंने जो सुना कि हम राजवश के आदमी हैं, तो बड़ी ख़ातिर की, और हाथी पर सवार करके नदी से पार उतारा। अभी हम पार उतर ही रहे थे कि सामने से अङ्गरेजी फ़ौज आगई, और नवाब की फौज से लडाई होने लगी।

मेरे पति और मिरजा उमरसुलतान ने चाहा कि नवाब की फौज मे सम्मलित होकर लड़ें, किन्तु रिसालदार ने कहा —"औरतों को लेकर जल्दी चले जाइये। हम जैसा अवसर होगा, भुगत लेंगे।" सामने खेत थे, जिनमे पकी हुई तैयार खेती खडी थी हम लोग उसके अन्दर छिप गये। जालिमों ने ख़बर नहीं, कैसे देख लिया—कि अचानक एक गोली खेत में आई, जिससे आग भडक उठी, और सब खेत जलने लगा। हम लोग वहाँ से निकलकर भागे। किन्तु हाय, कैसी आपति थी! हमको

भागना भी न आता था। घास में उलझ-उलझकर गिरते थे। सर की चादरे वहीं रह गईं। नङ्गे-सर, होश उड़े हुए, सैकड़ों कष्ट सहते खेत के बाहर आये। मेरे और नूरमहल के पाँव तो लहू-लुहान होगये। प्यास के मारे जीभ बाहर निकल आई। जीनत अचेतावस्था मे थी। मर्द हमको सम्भालते थे, किन्तु हमारा सम्भलना कठिन था।

नूरमहल तो खेत से निकलते ही चकराकर गिर पड़ीं, और अचेत होगईं। मै जीनत को छाती में लगाये अपने पति का मुँह ताक रही थी, और दिल में कहती थी कि हे ईश्वर! हम कहाँ जायें? कहीं सहारा नहीं दीखता! भाग्यने ऐसा पलटा दिया, कि बादशाही से फकीरी होगई, किन्तु फ़क़ीरों को शान्ति तो होती है, यहाँ तो वह भी प्राप्त नहीं।

फ़ौज लड़ती हुई दूर निकल गई थी। बसती नदी से पानी लाया। हमने पिया, और नूरमहल के चेहरे पर छिड़का। नूरमहल रोने लगीं, और बोली—"अभी स्वप्न मे तुम्हारे पिता बादशाह-सलामत को देखा है—पट्टा और जंजीर पहने हुए खड़े हैं, और कहते हैं—'आज हम गरीबों के लिए ये काँटों-भरा धूल का बिछौना मखमल के फ़र्श से बढ़कर है। नूरमहल, घबराना नहीं—साहस से काम लेना। भाग्य में लिखा था कि बुढ़ापे मे ये कठिनाइयाँ झेलूँ। ज़रा मेरी कलसूम को दिखादो। मैं जेलखाने जाने से पहिले उसको देखूँगा।'

"बादशाह की ये बातें सुनकर मेरे मुँह से 'हाय!' निकली और आँख खुल गई। कलसूम! क्या वास्तव में वे बन्दियों के समान बन्दीगृह मे भेजे गये होंगे?"

मिरज़ा उमरसुलतान ने इसका उत्तर दिया—"निरा स्वप्न है। बादशाह लोग बादशाहो के साथ ऐसा बुरा व्यवहार नही किया करते। तुम घबराओ नहीं। वे अच्छी दशा मे होंगे।"

बादशाह की समधन हाफ़िज़ा सुलताना बोलीं—"ये मुए फ़िरङ्गी बादशाहों की क़द्र क्या ख़ाक जानेंगे! ख़ुद अपने बादशाह का सर काटके सोलह आने को बेचते हैं। मैं कहती हूँ कि बनियों से तो इससे अधिक बुरा व्यवहार भी दूर नहीं।" किन्तु मेरे पति मिरज़ा ज़ियाउद्दीन ने सान्त्वना की बातें करके सब को शान्त कर दिया।

इतने में बसती नाव मे गाड़ी को इस पार ले आया। हम सवार होकर चल दिये। कुछ दूर जाकर शाम होगई, और हमारी गाड़ी एक गाँव मे जाकर ठहरी, जिसमें मुसल्मान राजपूतों की बस्ती थी। गाँव के नम्बरदार ने एक छप्पर हमारे वास्ते ख़ाली करा दिया, जिसमें सूखी घास और फूस का बिछौना था। वे लोग इसी घास पर, जिसको पयाल कहते थे, सोते हैं। हमको भी बड़ी ख़ातिरदारी से, जो उनके ख़याल में बड़ी ख़ातिर थी, यह नरम बिछौना दिया गया। मेरा तो इस कूड़े से जी उलझने लगा। पर क्या

करती ? उस समय इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता था ? विवश उसी पर पड़ रहे। दिन-भर के कष्ट तथा थकान के पश्चात् शान्ति तथा निश्चिन्तता प्राप्त हुई। नींद आगई। रात को यकायक हम सब की आँखें खुल गईं। घास के तिनके सुइयों के समान शरीर मे चुभ रहे थे, और पिस्सू जगह-जगह काट रहे थे। उस समय की विकलता भी अवर्णनीय थी। पिस्सुओं ने सारे शरीर मे आग लगादी थी। मखमली तकियो, रेशमी नरम-नरम बिछौनों की आदत थी, इस कारण कष्ट हुआ, अन्यथा गाँव के आदमी इसी घास पर बेहोशी की नींद सो रहे थे। अन्धेरी रात में चारों ओर से गीदडों की आवाजें आरही थीं, और मेरा दिल डरा जाता था। भाग्य को पलटते देर नहीं लगती। कौन कह सकता था कि एक दिन भारतवर्ष के सम्राट् के बाल-बच्चे यों जमीन पर लेटते फिरेंगे ? संक्षेप यह, इसी प्रकार एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव पर भाग्य-चक्र का कौतुक देखते हुए हैदराबाद पहुँचे, तथा सीताराम पेठ में एक घर किराये पर लेकर ठहरे। जब्बलपुर में मेरे पति ने एक जड़ाऊ अँगूठी, जो लूट-खसोट से बची थी, बेची। इसी से मार्ग का खर्च चला, और कुछ दिन यहाँ भी बीते। अन्त में जो-कुछ था, समाप्त होगया। अब चिन्ता हुई कि पेट भरने का क्या ढङ्ग किया जाय ? मेरे पति बहुत अच्छे सुलेखक थे। उन्होने 'दरूद-शरीफ' 'ईरान'-लिपि में लिखा, और

चार मीनार पर बेचने ले गये। लोग इस ख़त को देखते थे, और चकित हो जाते थे। पहले दिन पाँच रुपये को 'दरूद-शरीफ़' बिका। इसके बाद ऐसा रहा कि जो कुछ लिखते कम-बढ़ती तत्काल बिक जाता था। इसी प्रकार हमारा समय बहुत अच्छी प्रकार व्यतीत होने लगा। बाद में नदी के चढ़ाव से डरकर शहर में दारोग़ा अहमद के मकान मे उठ आये। यह निज़ाम का ख़ास नौकर था। इसक बहुत-से मकान किराये पर चलते थे।

कुछ दिनों बाद खबर उड़ी कि नवाब लशकरजङ्ग, जिसने राजकुमारों को शरण दी थी, अँग्रेज़ों का कोप-भाजन हो गया है, तथा अब से कोई मनुष्य दिल्ली के राज-कुमारों को शरण नही देगा,—प्रत्युत जिस राजकुमार का समाचार मिलेगा, उसको बन्दी कराने का प्रयत्न करेगा। हम सब इस समाचार से घबरा गये, और मैंने अपने पति को बाहर निकलने मे रोक दिया, जिससे कोई वैरी न पकड़वा दे, घर में बैठे-बैठे निराहार की नौबत आगई, तो विवश होकर मेरे पति ने बारह रुपये मासिक पर एक नवाब के लड़के को कुरान पढ़ाने की नौकरी करली। चुपचाप उसके घर चले जाते और पढ़ाकर आ जाते। किन्तु उस नवाब का स्वभाव इतना बुरा था कि सदैव मेरे पति के साथ साधारण नौकरों के समान व्यवहार किया करता था, जिस-को वह सहन न कर सकते थे। घर में आकर रो-रोकर

प्रार्थना करते थे—"भगवन्! इस अपमान की नौकरी से मृत्यु लाख-गुना अच्छी है। तूने इतना मोहताज बना दिया कि कल तो इस नवाब-जैसे सैकड़ों हमारे सेवक थे, और आज हम उसके सेवक हैं।"

इन्हीं दिनों में मियाँ निज़ामउद्दीन ने शाह को हमारी खबर कर दी। मियाँ का हैदराबाद में बड़ा मान था, क्योंकि आप हज़रत काले मियाँ साहब चुश्ती निज़ामी फ़ख़री के, जिनको दिल्ली के सम्राट् तथा निज़ाम अपना पीर (गुरू) मानते थे, पुत्र थे। मियाँ रात के समय मियाने में बैठकर हमारे पास आये, और हमको देखकर बहुत रोये। जब वह किले में आया करते थे, तो सुसज्जित मसनद पर बिठाये जाते थे। बादशाह-बेगम स्वयं अपने हाथ से लौंडियों के समान मक्खी उड़ाया करती थीं। आज वह घर में आये, तो साबुत बोरिया भ न था, जिस पर वह आराम से बैठ जाते। पिछला समय आँखों में घूमने लगा। ईश्वर की महिमा—क्या था, क्या होगया! मियाँ बहुत देर तक हाल पूछते रहे। इसके बाद चले गये

प्रातःकाल सन्देश आया—खर्च का प्रबन्ध करवा दिया है। अब तुम हज्ज का प्रबन्ध करलो। यह सुनकर चित्त आह्लादित हो गया। मक्के-शरीफ की तैयारियाँ होने लगीं। सारांश यह कि हैदराबाद से चलकर बम्बई आये,

और यहाँ अपने सच्चे मित्र वसती को ख़र्च देकर उसके घर बिदा कर दिया।

जहाज़ में बैठे। जो यात्री यह सुनता था कि हम भारतवर्ष के सम्राट् के घराने के हैं, हमारे देखने की उत्कण्ठा प्रकट करता था। हम सब साधुओं के-से रँगे हुए वस्त्रों में थे। एक हिन्दू ने, जिसकी शायद अदन में दुकान थी, तथा जो हमारे वृत्तान्त से अपरिचित था, पूछा—"तुम लोग किस पन्थ के फकीर हो ?" इसके इस प्रश्न ने ज़ख्मी दिल को छेड़ दिया। मैं बोली—"मज़लूम (अन्याय-पीड़ित) शाह-गुरू के चेले हैं। वही हमारा बाप था, और वही हमारा गुरू। पापी लोगो ने उसका घर-बार छीन लिया, और हमको उससे अलग करके जंगलों मे निकाल दिया। अब वह हमारी सूरत को तरसता है, और हम उसके दर्शना-बिना बेचैन हैं। इससे अधिक और क्या अपनी फ़क़ीरी की दशा वर्णन करें ?" जब इसने हमारा वास्तविक वृत्तान्त लोगों से सुना, तो रोने लगा, और बोला—"बहादुरशाह हम सब का बाप और गुरू था। क्या करे, रामजी की यही इच्छा थी कि वह निरपराध नष्ट होगया।"

मक्के पहुँचे, तो यहाँ अल्लाह-मियाँ ने ठहरने का एक अजीब ठिकाना पैदा कर दिया। अब्दुलकादिर नामक मेरा एक दास था, जिसको मैंने मुक्त करके मक्के भेज दिया था। यहाँ आकर उसने बहुत धन कमाया था, और ज़मज़म का

दारोगा होगया। उसको हमारे आने का समाचार मिला, तो दौडा हुआ आया, और पाँव पर गिरकर खूब रोया। उसका मकान बहुत अच्छा और आराम का था। सब वहीं ठहरे।

कुछ दिनो बाद सुलतान-रूम के प्रतिनिधि को, जो मक्के में रहता है, हमारी खबर हुई। वह भी हमसे मिलने आया। किसी ने उससे कहा था कि दिल्ली के सम्राट् की लडकी आई है, जो बिना किसी प्रकार की लज्जा के बातें करती हैं। सुलतान के प्रतिनिधि ने अब्दुलक़ादिर के द्वारा मिलने का सन्देश दिया, जो मैंने स्वीकार किया। दूसरे दिन वह हमारे घर पर आया, और बहुत मान-मर्यादा से बातचीत की। अन्त में उसने कहा कि मैं आपके आगमन की सूचना सुलतान को देना चाहता हूँ। मैंने इसका उत्तर बडी लापरवाई से दिया कि अब हम एक बडे सुलतान के दरबार में आगये हैं, अब हमें किसी दूसरे सुलतान की परवा नहीं है। प्रतिनिधि ने यथेष्ट धन हमारे व्यय के लिये नियत कर दिया। हम नौ वर्ष वहाँ रहे। एक वर्ष नजफ़ तथा करबला में व्यतीत किया। इतने दिनों के बाद दिल्ली को याद ने विकल किया, और वहाँ से चलकर दिल्ली आगये।

यहाँ अँग्रेज़ों की सरकार ने बडा तरस खाकर दस रुपये मासिक पेन्शन नियत करदी। पेन्शन के रुपयों की संख्या

सुनकर पहले तो मुझे हँसी आई कि बाप का इतना बड़ा देश लेकर दश रुपये प्रतिकार देते हैं। किन्तु फिर सोचा कि देश तो ईश्वर का है, किसी के बाबा का नहीं। वह जिसको चाहता है—दे देता है, जिससे चाहता है—छीन लेता है। मनुष्य को दम मारने का साहस नहीं।

अनाथ राजकुमार की ईद

सन् १३३२ हिजरी की ईद-उल्-फ़ितर का ज़िक्र है। दिल्ली में २९ का चाँद दिखाई नहीं दिया। दर्ज़ी ख़ुश थे कि उनको एक दिन काम करने को मिल गया। जूतेवालों को भी खुशी थी कि एक दिन की बिक्री बढ गई। किन्तु मुसलमानों के एक ग़रीब मोहल्ले में तैमूर-वश का एक घराना इस दिन बहुत दु:खित था। ये लोग अपने घर के मालिक दिल्दारशाह को दफ़न करके आये थे।

दिल्दारशाह दस दिन से बीमार थे। इनको पाँच रुपये मासिक पेन्शन मिलती थी। घर में इनकी स्त्री और यह स्वय किनारी बुनते थे, जिससे इनको इतनी आय थी कि ख़ूब मज़े से जीवन व्यतीत करते थे।

इनके चार बच्चे थे,—तीन लडकियाँ और एक लडका। दो लडकियों के विवाह हो गये थे, एक डेढ़ साल की गोद में थी। एक लड़का दस वर्ष का था।

दिल्दारशाह इस लड़के को बहुत चाहते थे। बेगम ने बहुत चाहा कि लडका मकतब में जाय, मगर दिल्दारशाह

को बच्चा इतना लाड़ला था कि उन्होंने एक दिन उसको मकतब न भेजा।

लड़का दिन-भर गलियों में आवारा फिरता था। ज़बान पर गालियाँ इतनी चढ़ गईं थीं कि बात-बात पर गाली बकता था, और बाग़जान इसकी भोली-भोली बातों से प्रसन्न होते थे।

मिरज़ा दिल्दारशाह बहादुरशाह के निकट-सम्बन्धी थे। मरते समय उनकी आयु ६५ वर्ष की होगी, क्योंकि जब यह लड़का उनके यहाँ पैदा हुआ था, तो उनकी उम्र ५५ वर्ष की थी।

बुढ़ापे की सन्तान सब को प्यारी होती है, विशेषकर बेटा। मिरज़ा दिल्दारशाह जितना प्यार करते थोड़ा था।

एक दिन इनके एक मित्र ने कहा—"साहब-आलम, बच्चू के लिखने-पढ़ने की यही उम्र है। अब न पढ़ेगा तो कब पढ़ेगा? लाड़—प्यार भी एक हद तक अच्छा होता है। आप इसके मार्ग में काँटे बोते हैं। ईश्वर आपकी आयु बढ़ावे, जीवन का कोई भरोसा नहीं है। एक दिन सब को मरना है। ईश्वर न करे, आपकी आँखे बन्द होगईं, तो इस बेचारे का कहीं ठिकाना न रहेगा। लिख-पढ़ लेगा, तो दो रोटियाँ कमा खायगा। इस समय भले आदमियों को जीवन व्यतीत करना बड़ा कठिन हो गया है। कुछ आगे का भी ध्यान रखना चाहिये। ऐसा न हो, इसको ग़ैरों के सामने हाथ फैलाना पड़े, और पूर्वजों की नाक कटे।"

मिर्ज़ा दिल्दारशाह इस सहानुभूति से बिगड़ गये, और बाले—"आप मेरे मरने की बदशुगनी करते हैं। अभी मेरी कौन-सी ऐसी उम्र होगई है। लोग तो १०० वर्ष तक जीवित रहते हैं। रहा बच्चे का पढ़ाना, सो मेरे निकट तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं। बड़े-बड़े बी० ए०, एम्० ए०-पास मारे-मारे फिरते हैं, और दो-कौड़ी को कोई नहीं पूछता। मेरा बच्चा पहिले ही कमज़ोर है, आये-दिन बीमार रहता है। मेरा जी नहीं चाहता कि ज़ालिम उस्तादों को सौंपकर इसकी सुकुमार हड्डियो को कमचियों का निशाना बनवाऊँ। जब तक मेरे दम में दम है, मौज कराऊँगा। मैं न रहूँगा, तो ईश्वर पालन-पोषण करनेवाला है। वह चीउँटी तक को खाना देता है, पत्थर के कीड़े को खाना पहुँचाता है, आदमी के बच्चे को भूखा नहीं मारेगा। मियाँ, हमने ज़माने का बड़ा गर्म-सर्द रङ्ग देखा है। हमारे माँ-बाप ने भी हमको नहीं पढ़ाया था, तो क्या हम भूखे मरते हैं?"

उपदेश करनेवाले बेचारे यह उत्तर सुनकर चुप हो गये, और दिल ही दिल में पछताये कि हमने व्यर्थ उनसे सहानुभूति की बात कही। किन्तु उन्होंने सोचा कि सत्य कहने के स्थान में मौन रहना पाप है। सच्ची बात से चुप रहनेवाला आदमी शैतान है। अतएव उन्होंने फिर कहा, "जनाब, आप रुष्ट न हों। मैं, ईश्वर न करे, आपका मरना नही चाहता। मैंने तो एक दूरदर्शिता की बात कही थी।

आपको अप्रिय लगी हो तो क्षमा कीजियेगा। किन्तु यह विचारिये कि आपके बचपन में और दशा थी, तथा आजकल और समय है। उस समय क़िला आबाद था। बादशाह-सलामत की छाया सर पर थी। प्रत्येक बात से निश्चिन्तता थी। किन्तु आज तो कुछ भी नही। न बादशाही है, न अमीरी है—प्रत्येक मुसल्मान के घर मे फ़क़ीरी है। अब तो जो हुनरमन्दी सीखेगा, और अपना रोटी अपने गट्टों से कमायेगा, वही लालों का लाल बनेगा, अन्यथा अपमान के अतिरिक्त कुछ हाथ न आयगा।"

दिल्दारशाह ने कहा—"हाँ, यह सच है। मै इसको समझता हूँ। किन्तु हमारी भी तो इतनी आयु इसी बरबादी के समय मे बीत गई। सरकार ने पाँच रुपये की जो पेन्शन नियत की है, तुम जानते हो कि उसमें हमारे कितने खर्च निकलते होंगे। आठ आने रोज़ तो बच्चे का खर्च है। हम दोनो मियाँ-बीबी रुपये ड़ेढ़ रुपये की रोज़ किनारी बुनते हैं, और आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं।"

ये बाते होरही थीं कि एक तीसरे साहब पधारे, और उन्होने कहा—"ऑस्ट्रिया के बादशाह का युवराज मारा गया। जब बादशाह को इसका समाचार पहुँचा, तो वह व्याकुल होगया, और हाय मारकर बोला—'निष्ठुर निर्दइयों ने सब-कुछ लूट लिया। मेरे लिये कुछ भी न छोड़ा।'

मिरज़ा दिल्दारशाह यह सुनकर हँसने लगे, और बोले, "भाई, वाह ! अच्छी बहादुरी है । बेटे के अचानक मरने से ऐसे घबराये ? मियाँ, जब बहादुरशाह-हज़रत के पुत्र, मिरज़ा अबूबकर, गोली से मारे गये और उनका सर काटकर सामने लाया गया, तो बादशाह ने लापरवाई से कहा—"ईश्वर का धन्यवाद है । लाल वर्ण होकर सन्मुख आया । मर्द लोग इसी दिन के लिये बच्चे पालते हैं ।"

जो साहब समाचार लाये थे, बोले—"क्यों जनाब, गदर में आपकी क्या उम्र होगी ?"

मिरज़ा दिल्दारशाह ने कहा—"कोई चौदह-पन्द्रह वर्ष की । मुझे सब घटनायें अच्छी तरह याद हैं । बाबाजान हमको लेकर गाज़ियाबाद जारहे थे कि हीडन नदी पर फ़ौज ने हमको पकड़ लिया । माताजी और मेरी बहन चीखें मारकर रोने लगीं । पिताजी ने उनको मना किया, और आँख बचाकर एक सिपाही की तलवार उठाली । तलवार हाथ में लेनी थी कि सिपाही चारों ओर से उन पर टूट पड़े । उन्होंने दो-चार को जख्मी किया, किन्तु सङ्गीनों और तलवारों के इतने वार उन पर हुए कि बेचारे टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़े, और शहीद हो गये । इसके बाद सिपाहियों ने मेरी बहन-माँ के कानों को नोच लिया, और जो-कुछ उनके पास था, छीनकर चलते हुए । मुझको उन्होंने बन्दी करके साथ ले लिया । जिस समय मैं माता से जुदा हुआ हूँ,

उनकी चीत्कार से आकाश हिला जाता था। वह कलेजा थामे हुए चिल्लाती थीं, और कहती थीं—"अरे मेरे लाल को छोड दो। तुमने मेरे स्वामी को मट्टी में सुला दिया। इस अनाथ पर तो दया करो। मैं रँडापा किसके सहारे काटूँगी। हे ईश्वर! मेरा कलेजा फटा जाता है। मेरा दिल्दार कहाँ जाता है? कोई अकबर-शाहजहाँ को क़ब्र में से बुलाये, और उनके घराने की दुखिया की विपता सुनाये। देखो, मेरे दिल के टुकड़े को मुट्ठो से मसले देते हैं। अरे कोई आओ! मेरी गोदियों का पाला मुझको दिलवादो।"

छोटी बहन 'आका भाई, आका भाई' कहती हुई मेरी ओर दौड़ी। किन्तु सिपाही घोड़ों पर सवार होकर चल दिये, और मुझको बागडोर से बाँध लिया। घोड़े भागते थे, तो मैं भी दौड़ता था। ठोकरे खाता था, पाँव लहू-लुहान होगये थे। दिल धड़कता था। दम उखड़ा जाता था।"

एक साहब ने पूछा—"मिरज़ा, यह बात रह गई कि फिर तुम्हारी माता और बहन का क्या हाल हुआ?

मिरज़ा ने कहा—"आज तक उनका पता नहीं। मालूम नहीं, उन पर क्या बीती, और वे कहाँ गईं। मुझको सिपाही अपने साथ दिल्ली लाये, और यहाँ से इन्दौर लेगये। मुझसे वे घोड़े मलवाते थे और घोड़ों की लीद साफ़ कराते थे।

"कुछ दिनों के बाद मुझको छोड़ दिया गया। मैंने इन्दौर मे एक ठाकुर के यहाँ द्वारपाल की नौकरी करली। कई वर्ष

इसमें बिताये। फिर दिल्ली में आया और सरकार में प्रार्थना-पत्र दिया। उसकी कृपा से मेरी भी औरों के समान पाँच रुपये मासिक पेन्शन नियत हुई। इसके बाद मैंने विवाह किया, और ये बच्चे पैदा हुए।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद मिरज़ा दिल्दारशाह बीमार हुए, और दस दिन बीमार रहकर अन्त में परलोक सिधारे।

उनके मरने का दु:ख सब से अधिक उनकी पत्नी और पुत्र को था। लड़का दस वर्ष का था, और अच्छी तरह समझता था कि पिताजी मर गये हैं। किन्तु वह बार-बार माता से कहता था कि पिताजी को बुलवादो।

अस्तु, इस रोने-धोने में ये सब लोग सोगये। सहरी के समय बेगम साहब उठीं, तो देखा कि घर में झाड़ू लगी हुई है। कपड़ा लत्ता, बरतन, भाँडा सब चोर ले गये हैं। बेचारी विधवा ने सिर पीट लिया और बोली—"हाय! अब मैं क्या करूँगी? मेरे पास तो एक तिनका भी न रहा। घर के मालिक के उठते ही चोरी भी हुई।"

आस-पास के मौहल्लेवाले उनके रोने की आवाज सुनकर जमा होगये और सब ने बहुत खेद प्रगट किया।

पड़ौस में एक गोटेवाले रहते थे, उन्होंने सहरी के लिये दूध और नानपाव भेजा। बेचारी ने ठण्डी साँस भरकर उसको ले लिया।

यह पहला दिन था कि विधवा राजकुमारी ने ख़ैरात की सहरी खाई। इस बात का उसको सब से अधिक दुःख था। दिन हुआ, चारों ओर ईद के सामान दिखाई देने लगे। प्रत्येक घर में चाँद-रात की चहल-पहल थी। न थी तो इस घर मे, जहाँ दूध-पीती बच्ची को गोद में लिये विधवा राजकुमारी अनाथ राजकुमार को समझा रही थी, क्योंकि वह नई जूती और नये कपड़े माँगता था।

"बेटा! तुम्हारे पिताजी परदेश गये हैं। वह आजायें, तो कपड़े मँगा देंगे, जूती पहना देंगे। देखो, तुम्हारे दूल्हा-भाई भी बनारस गये हुए हैं। वह होते उनसे ही मँगवा देते। अब किसको बाजार भेजूँ?"

लड़के ने कहा—"मैं स्वयं ले आऊँगा। मुझको दाम देदो। दाम का नाम सुनकर दुखिया विधवा के आँसू आगये। उसने कहा—"तुम्हें पता नही रात को घर मे चोरी होगई। अब हमारे पास एक पैसा भी नहीं है।"

हठी राजकुमार ने मचलकर कहा—"नहीं, मैं तो अभी लूँगा।" यह कहकर दो-चार गालियाँ माँ को सुनादीं। मुसीबत की मारी ने ठण्डी साँस भरकर आकाश को देखा, और बोली—"अच्छा, ठहरो! मैं मँगाती हूँ।" यह कहकर पड़ोस के घर से लगी हुई खिड़की में जाकर खड़ी हुई, और गोटेवाले की स्त्री से कहा—"बुआ, सूतक के दिन हैं, मैं अन्दर तो नहीं आ सकती। जरा मेरी बात सुन जाओ।"

वह बेचारी तत्काल उसके पास आइ, तो उससे सारा हाल सुना दिया, और उससे कहा—"ईश्वर के लिये अपने बच्चे की उतरन कोई जूती या कपड़ों का जोड़ा हो, तो एक दिन के लिये माँगे देदो। कल सायंकाल को वापिस दे दूँगी।"

राजकुमारी उतरन कहते वक्त, आँसुओं को न रोक सकी। हिचकी लेकर रोने लगी। पड़ोसन को बड़ी दया आई। उसने कहा—"रोने और जी भारी करने की कुछ बात नहीं। नन्हे की कई जूतियाँ और कई जोड़े फ़ाल्तू रक्खे हैं। एक तुम ले लो। इसमें उतरन का ख्याल न करो। उसने तो एक-एक दिन यूँ-ही ज़रा पाँव में डाली थी, मैंने सँभाल-कर रखदीं।"

यह कहकर पड़ोसन ने जूती और कपड़े राजकुमार को दिये। राजकुमारी वे सब चीज़े लेकर बच्चे के पास आई, और उसको ये सब दिखाई। बच्चा प्रसन्न हो गया।

दूसरे दिन ईदगाह जाने के लिये राजकुमारी ने अपने बच्चे को भी गोटेवाले पड़ोसी के साथ कर दिया। ईद-गाह पहुँचकर अनाथ राजकुमार ने गोटेवाले के लड़के से कहा—"अबे, तेरी टोपी से हमारी टोपी अच्छी है।"

गोटेवाले के लड़के ने उत्तर दिया—"चल बे! उतरन-कुतरन पर इतराता है, अबे, यह भी मेरी टोपी है। अम्मा ने कल दान देदी है।"

यह सुनना था कि राजकुमार ने एक ज़ोर-का थप्पड़ गोटेवाले के बच्चे के रसीद किया, और कहा,—"हमको दान लेनेवाला बताता है !"

गोटेवाले ने जो अपने बच्चे को पिटता देखा, तो उसको भी क्रोध आगया, और उसने दो-तीन थप्पड़ राजकुमार के मारे। लड़का रोता हुआ भागा। गोटेवाले ने सोचा कि उसकी माँ क्या कहेगी कि साथ ले गये थे—कहाँ छोड़ आये। इसलिये उसको पकड़ने को दौड़ा, किन्तु लड़का आँखों से ओझल हो गया। अन्त में विवश होकर गोटेवाला अपने घर चला आया।

अब अनाथ राजकुमार को यह दशा हुई कि वह सब आदमियों के साथ ईदगाह से घर को आ रहा था कि रास्ते मे एक गाड़ी की झपट मे आकर गिर पड़ा, और ज़ख्मी हो गया। पुलिस शफ़ाख़ाने ले गई।

यहाँ घर मे उसकी माँ का अजब हाल था। ग़श पर ग़श आते थे। दो वक्त़ से भूखी थी। इस पर ईद और यह मुसीबत कि लड़का खोया गया। कोई पूछनेवाला नहीं। जो लड़के को ढूँढ़ने जाये। अन्त में बेचारा वही गोटेवाला फिर गया, और पुलिस में रपट लिखवाई, उस वक्त़ मालूम हुआ कि वह शफ़ाख़ाने में है। शफ़ाख़ाने में जाकर ख़बर लाया, और राजकुमारी को सारा हाल सुनाया। उस समय की दशा का कुछ वर्णन् नहीं किया जा सकता।

ग़दर के मारे पीरजी घसियारे

हज़रत दीनअली शाह क़लन्दर दिल्ली के प्रसिद्ध बुज़ुर्ग थे। फ़राशख़ाने के बाहर उनका तकिया अब तक प्रसिद्ध है। मैं गदर से पहले, जवानी में मस्त, उनकी सेवा में उपस्थित हुआ करता था।

मुझको पीर का लड़का होने के अतिरिक्त रुपये का भी घमण्ड था, सूरत-शक्ल का गर्व था, अपने बाहु-बल पर बहुत अकड़ता था। माँ-बाप का इकलौता था। पिता से अधिक माता को मुझसे प्यार था। पिता ख़ास बाज़ार में रहते थे। उनके सहस्रों शिष्य थे। राजकुमार-राजकुमारियाँ प्रत्येक समय उनके पास आती थीं। भेंट-पूजा की कुछ सीमा न थी। सारांश यह कि हम निर्द्वन्द होकर आनन्द उड़ाते थे। किन्तु पिताजी की यह दशा थी कि वह इतनी अधिक आय होते हुए भी सदैव नगीनों का काम करके जीवन व्यतीत किया करते थे, और शिष्यों के माल के हाथ न लगाते थे।

एक दिन मैंने माता से पूछा—"क्योंजी, पिताजी के घर में सब-कुछ होते हुए वह नगीने क्यों घिसा करते हैं? बड़े अपमान की बात है। ईश्वर ने सब-कुछ दिया है, फिर क्यों व्यर्थ पापड़ बेलते हैं?"

माताजी ने हँसकर कहा—"बेटा, उनका सिद्धान्त है कि पूर्ण साधु वही है, जो अपनी रोटी अपने हाथ से कमाये, दूसरों के सहारे पर हाथ-पाँव तोड़कर न बैठे। उनका कहना है कि अमीर शिष्यों से जो मिलता है, वह ग़रीब शिष्यों का भाग है, हमारा नहीं। हमें अपनी जीविका स्वय उपार्जन करनी चाहिये।"

मैंने कहा—"तो क्या शिष्यों की भेंट हराम है, जो वह नहीं खाते?"

माता ने कहा—"हराम तो नहीं है, किन्तु उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। वह दूसरों के लिये है। ईश्वर यह भेंट इसलिए भेजता है कि हम अपने असहाय भाइयों की सहायता करें, और स्वय जब तक हाथ-पाँव चलते हैं, अपनी रोटी आप कमायें।"

इस बातचीत के तीसरे दिन जहाँपनाह मोहम्मद बहादुरशाह की ख़ास बेगम नवाब ज़ीनतमहल पिता की सेवा में उपस्थित हुईं। उनके साथ दुरदाना-नामक एक टहलनी भी थी। ज्यों-ही उस पर मेरी दृष्टि पड़ी, दिल में एक तीर-सा लगा। उसने भी मुझे उत्कण्ठापूर्ण

दृष्टि से देखा। किन्तु दोनों बेबस थे, बात न कर सकते थे।

बेगम साहब ने कई बार 'दुरदाना' कहकर पुकारा, तो मालूम हुआ, अन्यथा इस बात का अवसर मिलना भी कठिन था कि मै स्वयं छोकरी का नाम पूछता।

बेगम साहब चली गईं। मेरी दशा बिगडनी आरम्भ हुई। दो रात बिल्कुल नींद न आई। रोटी तक छुट गई। बहुत सोचता था कि दुरदाना से मिलने की कोई सूरत निकले, किन्तु कोई उपाय समझ मे न आता था। अन्त में जब व्याकुलता बहुत अधिक बढ़ी, तो पूर्ववत् हज़रत दीन अली-शाह कलन्दर की सेवा में उपस्थित हुआ, और सारी विपता कह सुनाई। वह हँसकर चुप होगये। दूसरी बार प्रश्न करने का साहस न हुआ। निराश घर को लौटा। मार्ग में हुसैनी पतंगबाज़ मिला, जो मेरा बड़ा पक्का मित्र था। उसने जो उतरी हुई शक्ल देखी तो घबराकर पूछने लगा—"कहो मित्र, कुशल तो है? तुम्हारे चेहरे पर हवाइयाँ क्यों उड़ रही हैं? आँखों में घेरे क्यों पड़ गये हैं?"

मैंने कहा—"भाई, दुरदाना-नामक छोकरी का प्रेम सर पर सवार है। यह अद्भुत प्रकार का नया रोग है। मैं तो इस मार्ग से परिचित भी न था। देखिये, क्या होता है? भाग्य इस जवानी के हाथों कैसा-कैसा अपमान कराता है।

दुरदाना को मिलवाता है, या हमको इस असार संसार से कब्रिस्तान भिजवाता है।"

हुसैनी ने कहा—"वाह, दोस्त, यह भी कोई हिरासाँ होने बात है। पहले यह बताओ, इश्क एक-तर्फा है—या दो-तर्फा ?"

तब मैंने सारा हाल कह सुनाया। सुनकर हुसैनी ने कहा—"दोस्त, आग दो तर्फा है। जैसे तुम व्याकुल हो, दुरदाना भी तुम्हारे प्रेम में छटपटा रही होगी। मेरी राय मानो, तो कुछ दिन हजरत दोनअली शाह के तकिये के निकट रहने का प्रबन्ध कर लो। वहाँ लोगों को गण्डे-तावीज़ बनाकर दिया करो। महल में तुम्हारी शोहरत पहुँचने-भर की देर है। ईश्वर सहायता करेंगे।"

मुझे यह बात जँच गई। घर जाकर माताजी से अपना इरादा कह दिया।

माता ने कहा—"ना मियाँ, मुझे तुमको जङ्गल में रखना स्वीकार नहीं। कुछ करना है, तो घर में करो। मैं एक पल तुमको आँखों से ओझल नहीं होने दूँगी।"

मैंने बहुत-कुछ समझाया, किन्तु माता के ध्यान में न आया। अन्त में पिताजी को यह खबर मालूम हुई। वह मेरे इस विचार से बहुत प्रसन्न हुए, और माता को राजी करके, कुछ बातें बताकर तकिये में भेज दिया। दोनों वक्त घर से नौकर जाता, खाना दे आता, और कुशल-समाचार ले आता।

कुछ दिन बाद की बात है। मैं रात के समय बैठा वज़ीफ़ा पढ़ रहा था कि इतने में दो अपरिचित व्यक्ति मेरे कमरे में आये। वे फटे-पुराने कपड़े पहने हुए थे। मैंने इशारे से कहा—"कौन हो ?" वे बोले—"मुसाफ़िर हैं।" मुझको कुछ सन्देह हुआ कि ये चोर न हों। वज़ीफ़ा छोड़कर पूछा—"यहाँ आने का क्या उद्देश्य है ?" बोले—"आपसे तावीज़ लेने आये हैं। दुरदाना-बीबी ने आपका पता बताया था।"

दुरदाना का नाम सुनकर जान में जान आगई। रात का समय था। दीपक टिमटिमा रहा था। मैं इन यात्रियों की शक्लें न पहचान सका। दिल ही दिल में प्रश्न करने लगा कि ये यात्री कौन हैं, जो दुरदाना को भी जानते हैं।

अन्त मे मैंने कहा—"आप दुरदाना को कैसे जानते हैं ?"

मुसाफ़िर बोले—"बेगम साहब से खर्च माँगने गये थे। वहीं उनसे मिलना हुआ। बहुत मिलनसार तथा नेक स्त्री हैं।"

मैंने कहा—"तुम किस बात का तावीज़ चाहते हो ?"

उन्होंने कहा—"वशीकरण का।"

मैंने पूछा—"किसके लिये।"

वे हँसकर बोले—"राजकुमार जवाँबख्त के लिये।"

अब मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही। राजकुमार जवाँबख्त ज़ीनतमहल के लाड़ले बेटे थे। बादशाह ने

मिरज़ा दाराबख्त के मरने के बाद मिरज़ा फख़्रू को युवराज नियत किया था, और ज़ीनतमहल इस प्रयत्न में थी कि जवाँबख्त को सिंहासन मिले।

मैंने कहा—"जवाँबख्त किसको वश में करना चाहता है?"

यह सुनकर मुसाफ़िरों ने तमञ्चे निकाल लिये, और मेरी ओर उनका मुँह करके बोले—"ख़बरदार! यह भेद किसी से न कहना। हम जवाँबख्त के जासूस हैं। तुमसे यह काम है कि तुम्हारे पिता के पास शाह आलम के जो गुप्त कागज़ हैं, जिनमें शाही दफ़ीनों का हाल है, वे हमको लादो। यदि तुम इस कार्य के करने का प्रण न करोगे, तो अभी काम-तमाम कर देंगे।"

तमञ्चे देखकर कुछ घबराहट हुई। किन्तु मैंने अपने होश ठीक करके कहा—"यदि दुरदाना मुझसे मिलने का वादा करे, तो मुझे कुछ उज्र नहीं है। मालूम होता है, वह तुम्हारे साथ है, और उसी से तुम्हें कागज़ों का पता चला है।"

वे बोले—"हाँ, यह सच है। दुरदाना तुमसे मिलेगी। मालूम हुआ है कि शाह आलम बादशाह ने तुम्हारे पिता को बुज़ुर्ग तथा विश्वासपात्र समझकर दफ़ीनों के कागज़ धरोहर रख दिये हैं, और कह दिया है कि आवश्यकता के समय मेरे योग्य स्थानापन्नों को देदेना।"

मैंने पूछा—"तो क्या दुरदाना रात को भी महलों में रहती है?"

वे बोले—"नही। आधी रात के निकट वह कश्मीरी दर्वाज़े के मकान में आजाती है, और वहीं हम रहते हैं।"

मैंने उनसे मकान का पता पूछा, और उसके बाद कहा—"मुझे कागज़ ला देने में तो कोई उज्र नही है, किन्तु पता नही, पिताजी ने उन्हे कहाँ रक्खा है। मैंने तो कभी उनका जिक्र भी नहीं सुना।"

जासूसो ने कहा—"देखो, झूठ न बोलो। जिस दिन तुमने दुरदाना को देखा है, उसी दिन कागजों का जिक्र आ रहा था।"

अब तो मै कुछ चिन्तित-सा हुआ। अन्त मे जी कडा करके कहा—"यह तो मुझसे न होगा।"

यह सुनते ही उन्होंने फिर तमञ्चे निकाल लिये, और मेरी ओर उनको छतियाया। शरीर मे शक्ति थी। औसान ठीक थे। मैंने लपककर तमञ्चों को पकड लिया, और झटका देकर छीन लिया। इसके बाद एक मुक्का उसके और एक मुक्का दूसरे के इस ज़ोर-से मारा कि वे चकराकर गिर पड़े, और मैंने दौड़कर उनके हाथ बाँध दिए। दोनों को बाँधकर कमरे में ताला लगाकर मैं कश्मीरी दरवाज़े पहुँचा। कोई ग्यारह बजे होंगे। जासूसों के बताये हुए मकान पर आवाज़ दी। दुरदाना ने पूछा—कौन है? मैंने कहा—ज़रा दरवाज़े पर आओ। दुरदाना निकट आई, तो मैंने कहा—"उन दोनो जासूसों ने भेजा है। तकिये के पास जो शाह साहब

आकर रहे हैं, वे उनके पास बैठे हैं। शाह साहब राज़ी होगये हैं। इस कारण उन्होंने तुमको बुलाया है कि आ जाओ, तो काग़ज़ अभी मिल जायेंगे।"

दुरदाना ने कहा—"तो डोली मँगालो। चलती हूँ।"

मैं मौहल्ले मे जाकर डोली ले आया, और कहारों को चुपके-से समझा दिया कि ख़ास बाज़ार ले चलना। अतएव दुरदाना को सवार करके मैं अपने घर लाया, और एक अलहदा दालान मे सवारी को उतरवाया। माताजी उस समय सोगई थीं। पिताजी कोठे पर थे। माता को जगा-कर सारा हाल कहा। वह डरी, किन्तु मेरी विनय से चुप होगईं, और मैं दुरदाना को दूसरे दालान मे लेगया। दीपक जलाते ही दुरदाना हक-धक रह गई और बोली—"हमें तुम यहाँ कहाँ ले आये ?"

मैंने कहा—"देखो, अब यह तुम्हारा घर है। यदि चिल्लाईं, तो कुशल नहीं नहीं है। मैंने उन जासूसों को क़ैद कर लिया है, और तुम भी मेरी क़ैद मे हो--यद्यपि- मेरा दिल तुम्हारी क़ैद मे है। मैं सब बातों से परिचित होगया हूँ। तुम राज़ी से चुप होगईं, तो यह तुम्हारा घर है—पत्नी बनाकर रक्खूँगा, नहीं तो तुमको और उन दोनों को जान से मार डालूँगा।"

दुरदाना ने कहा—"मुझे आपके यहाँ रहने में कोई उज्र नहीं है, मेरा दिल तो स्वयं इस बात का इच्छुक था। किन्तु

उन जासूसों को छोड़ दो। नहीं तो कुशल न होगी। यदि इनका बाल बाँका हुआ, तो बड़ा तहलका पड़ जायगा।"

मैंने कहा—"यदि इनको छोड़ दिया, तो मुझ पर आपत्ति आयगी।"

दुरदाना ने कहा—"कुछ आपत्ति नहीं। तुम अभी वहाँ जाओ, और उनसे कहो कि असली कागज़ तो मैं ला नहीं सकता, किन्तु पुराने कागज़ इस शर्त पर ला सकता हूँ कि दुरदाना के मामले पर पर्दा डाल दिया जाय।"

मैंने कहा—"मुझसे तो ऐसी नमकहरामी न होगी कि अपने ऊपर भरोसा करनेवाले बादशाह का भेद दूसरों को देदूँ।"

दुरदाना ने कहा—"यह कोई कठिन बात नहीं है। कल्पित बातें कागज़ों में लिख दो। उन्होंने असली कागज़ देखे थोड़े ही हैं, जो सन्देह करेंगे। क़िले के अन्दर दफीने हैं, वे उनको खोद भी नहीं सकते। वे तो केवल कागज़ चाहते हैं, जिससे भविष्य में काम आवे।"

मैंने यह बात पसन्द की। उस समय रात का एक बजा था। मैं फिर तकिये पर गया। कमरे से जासूसों को निकाला, और सारा हाल कहा। वे बोले—"यदि तुम हमें कागज़ों की नक़ल दोगे, तो हम दुरदाना के मामले में तुम्हारा साथ देंगे।"

वे छूटकर अपने घर गये। मैंने कह दिया कि कल दोपहर को नक़लें आपके मकान पर पहुँच जायँगी। दूसरे

दिन प्रातःकाल से मैंने नक़्शा करनी आरम्भ की। दुरदाना अपनी बुद्धि से कल्पित स्थान बताती जाती थी, और मैं लिखता जाता था।

इतने में पिताजी कोठे से नीचे आये। मैं उनकी अप्रसन्नता के डर से माताजी के पास चला गया। दुरदाना ने झुककर सलाम किया। पिताजी माता के पास गये, तो मैं वहाँ से भी उठकर चला आया। माता ने सारा हाल सुनाया। सुनकर पिताजी सन्नाटे में आगये, और बोले—"अब कुशल नहीं। अरे, बड़ा गज़ब हुआ! यह तो चिल्ला (तपस्या) करने गया था—इस मैना को कहाँ से ले आया? अच्छा, तो मैं इन दोनों का काम-तमाम किये देता हूँ।'

यह सुनकर माता हाथ जोड़ने लगीं, और पिता का क्रोध ठण्डा किया। पिता सीधे मेरे पास आये, और दुरदाना के बताये हुए कल्पित कागज़ को देखा, हँसकर बोले, "भई ख़ूब चकमा दिया है! ख़ैर, तुम्हारी मर्जी।"

पिता बाहर गये। मैं सीधा जासूसों के मकान पर पहुँचा और कागज उनको दिया, जिसको देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"जवाँबख़्त को तख़्त मिल गया, तो तुम्हें निहाल कर दिया जायगा।"

इसके बाद मैं घर आया और दुरदाना से विवाह करके हँसी-खुशी रहने लगा।

कुछ दिनों बाद ग़दर का झगड़ा हुआ। पिताजी ग़दर से पहले अपने एक शिष्य के यहाँ अम्बाले चले गये थे। मैं और दुरदाना भी साथ थीं।

जब ग़दर का झगड़ा मिटा, तो अम्बाले ही में पिता का परलोकवास होगया। मैं दिल्ली वापिस आया। किन्तु यहाँ देखा, तो ख़ास बाज़ार खुदकर ज़मीन के बराबर होचुका था। विवश होकर एक मकान किराये पर लिया, और उसी में रहना आरम्भ कर दिया।

अब पिता के जितने शिष्य थे, उनको या तो देश-निकाला होगया था, या फाँसियाँ मिल गई थीं। कुछ निर्धन होगये थे। मुझको उनसे सहायता की कोई आशा न रही थी, और खुद कुछ काम न आता था, जिससे जीवन-निर्वाह का कुछ ढङ्ग करता। कुछ दिन तो पिछला बचा हुआ खर्च होता रहा। इसके बाद तङ्गी शुरू हुई। दो-एक बार निराहार रहने की भी नौबत आगई। अब हमारे दो बच्चे भी थे। इसके अतिरिक्त दुरदाना बड़ी फजूलख़र्ची करती थी। अन्त मे दुरदाना की सम्मति से हमने फिर चिल्ले की ठानी, और उसी पुराने तकिये में जाकर आसन जमाया। कुछ दिनों के बाद हिन्दू स्त्रिये तावीज़-गण्डे के लिए आने लगीं, और प्रातः-काल से सायङ्काल तक रुपये-सवा रुपये की आमदनी होने लगी। पांच पैसे को तावीज़ और पाँच आने को गण्डा देना—यह साधारण नियम होगया था।

एक दिन दोपहर के समय सो रहा था कि स्वप्न में हज़रत दीनअली शाह कलन्दर और अपने पिता को देखा कि दोनों आपस मे बातें कर रहे हैं, और कह रहे हैं—"देखो, मैंने आयु-पर्यन्त नगीने का काम किया, और मेरा बेटा दूसरों की कमाई पर निर्लज्जता से जीवन व्यतीत कर रहा है।"

आँख खुली, तो रोना आगया। सीधा दुरदाना के पास आया, और सारा वृत्तान्त उससे कहा। उसने कहा—"यह तो स्वप्न है। काम कुछ आता नहीं, अब यह न करोगे, तो क्या करोगे?"

मैंने कहा-"नौकरी करूँगा।" यह ठानकर नौकरी ढूँढ़ना आरम्भ किया, और एक मकतब मे दस रुपये मासिक की नौकरी करली।

इसी बीच में दुरदाना बीमार हुई। बहुत-कुछ इलाज किया, किन्तु अच्छी न होसकी। उसके मरने ने मुझ पर बच्चों के पालन-पोषण का बोझ डाल दिया। नौकरी पर जाता, तो बच्चों को साथ ले जाता। रोटी बाजार में खाता था। इस प्रकार बडी कठिनाई से एक वर्ष बीता।

मकतब मे मेरी वेतन-वृद्धि होगई। बीस रुपये मिलने लगे। दो लड़के सायकाल को घर पर पढने आने लगे। इस प्रकार तीस रुपये पडने लगे। तीस रुपये मेरे लिये बहुत थे। इसलिये एक दिन यह विचार हुआ कि किसी भोजन बनाने-

वाली स्त्री को नौकर रखना चाहिये। इसके बिना काम चलना कठिन है।

इसी खोज में था कि एक दिन एक निर्धन स्त्री बुरक़ा ओढ़े भीख माँगने आई। मैंने कहा—"भागवान, नौकरी करले। भीख माँगना बहुत बुरा है।"

उस स्त्री ने रोनी आवाज़ में कहा—"मियाँ, तुम-ही नौकर रखलो। सब ज़मानत माँगते हैं। मैं ज़मानत कहाँ से लाऊँ?" मैंने कहा—"तुम कौन हो? तुम्हारा कोई सम्बन्धी भी है?"

उसने हिचकियाँ लेकर रोना आरम्भ किया, और कहा—"ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं। अधिक न पूछो। मुझमें वर्णन् करने की शक्ति नहीं है।"

मैंने कहा—"अच्छा, तो हमारे यहाँ रोटी पकाया करो।"

उसने स्वीकार किया, और रोटी पकाने लगी। किन्तु सदैव परदे का ध्यान रखती थी, और कभी मेरे सामने न आती थी। संयोगवश एक दिन मेरी दृष्टि उस पर पड गई। देखा—युवती तथा सुन्दरी है। मैंने उससे कहा—"बड़ी मुश्किल है। तुम्हारे परदे से तो जी घबराता है। तुम मुझसे विवाह न करलो, जिससे यह परदा उठ जाय।"

कुछ रुककर उसने यह बात मान ली, और मैंने उससे विवाह कर लिया। विवाह के बाद मैंने उसको देखा, तो ऐसा मालूम पड़ा, जैसे पहले कहीं देखा हो। किन्तु

कुछ समझ में न आता था कि मैंने पहले उसको कहाँ देखा है। उसने स्वय कहा—"तुमको शायद याद न रहा हो, मैं बचपन में माताजी के साथ तुम्हारे घर बहुत आया करती थी। मैं बहादुरशाह-बादशाह की नवासी हूँ। गौहर-बेगम मेरा नाम है।"

'गौहर-बेगम' नाम सुनकर मेरी आँखों में आँसु आगये। ईश्वर की महिमा! यह राजकुमारी थी—जिसके बड़े चाव-चोचले थे! अपनी माँ की इकलौती थी, और हमारे यहाँ बड़ी तड़क-भड़क से आया करती थी!

मैंने पूछा—"बताओ तो सही, तुम पर गदर में क्या-क्या बीती—तुम अब तक कहाँ-कहाँ रही?"

आप-बीती

गदर में मेरी आयु तेरह वर्ष की थी। गदर के अन्दर ही बड़ी दाई का परलोकवास होगया था, और मैं छोटी दाई के पास रहती थी। जब बादशाह दिल्ली से भागे, तो दाई मुझको लेकर अङ्गरेजी जनरल के पास गई, और सारा हाल बयान किया। उसने बड़े प्रेम से मुझको अपने डेरे में रक्खा, और दूसरे दिन एक पञ्जाबी मुसल्मान अफ़सर को सौंप दिया। वह अफसर मुझे लिए हुए लखनऊ गया। वहाँ उन दिनों में लड़ाई हो रही थी, जिसमें बेचारा अफसर मारा गया, और मैं भागकर उन्नाव चली गई। उन्नाव में एक

हिन्दू ने अपने घर में रक्खा। किन्तु उसकी नीयत बुरी देखकर वहाँ से भागी। मार्ग में एक देहाती ज़मींदार मिला। वह मुझे अपने घर लेगया, और कुछ दिनों बाद अपने लड़के से मेरा विवाह कर दिया। किन्तु मुझको इन गँवारों मे रहन दूभर था। बस, नर्क का मजा आता था। ईश्वर की लीला—गँवारों में वहाँ के किसी खेत पर लडाई हुई। मेरे पति और श्वसुर को दुश्मनों ने मार डाला, और मैं उस घर से निकल-कर कानपुर आई। यहाँ एक सौदागर के यहाँ मामागीरी की नौकरी करली। यह सौदागर बड़ा बद-चलन था। मुझसे तो वह कुछ न कहता था, किन्तु रात-दिन उसके यहाँ दुराचारिणी स्त्रियाँ आती-जाती रहती थीं, जिससे मुझे घृणा होगई, और मैंने चाहा कि दिल्ली चली जाऊँ। अतएव एक दिन स्टेशन पहुँची, और बाबू की ख़ुशामद की कि मुझे दिल्ली पहुँचा दो। उसने मालगाड़ी में गार्ड के सुपुर्द कर दिया। उसने मुझे दिल्ली लाकर उतार दिया।

दिल्ली मे आई, तो आश्चर्य में थी कि भगवान्! कहाँ जाऊँ? कोई जान-पहचान का न था। सोचते-सोचते चेलों के कूचे में आई। वहाँ मेरा अन्नू कहार रहता था। अन्नू कहार तो मर गया था, किन्तु उसकी पत्नी ने जब हाल सुना, तो अपने पास रख लिया। उसके बेटे मछलियाँ पकडते थे। डोली का काम छोड़ दिया था। मैं उनके घर में रोटी पकाती थी।

एक दिन रात को कहार के लड़के ने कहा—"ये अमीर लोग भी बड़े आराम से हैं। धूप में मछलियाँ तो हम पकड़ें, और ये मज़े से खायें।"

मैंने कहा—"दाम भी तो देते हैं। दाम कमाने में उनको तुमसे अधिक परिश्रम तथा चिन्ता का शिकार होना पड़ता होगा।"

कहार यह सुनकर बिगड़ गया, और बोला—"चल री, तू हमारी बात में दखल देनेवाली कौन ?" यह कहकर एक बाँस मेरे सर पर मारा। सर फट गया, और मैं बेहोश होकर गिर पड़ी।

होश आया, तो नदी के रेत में पड़ी थी, और आस-पास कोई न था। हिलने-डुलने की शक्ति न थी। हिन्दू-स्त्रियाँ जमना पर स्नान करने जा रही थीं। मैंने उनसे हाथ जोड़कर कहा—"मुझे शफ़ाख़ाने पहुँचा दो। मेरे चोट लग गई है।" उन्हें दया आई और डोली मँगादी। मैं शफ़ाख़ाने आई। वहाँ इलाज हुआ। अच्छी होकर सदर बाज़ार में पहुँची। वहाँ एक पंजाबी के यहाँ रोटी पकाने की नौकरी करली।

पंजाबी भी बहुत बदचलन था। उसकी बुरी निगाहें देखकर मैं निकल आई, और भीख माँगने लगी, क्योंकि दो-चार जगह नौकरी को कहा, तो लोगों ने ज़मानत माँगी।

एक दिन भीख माँग रही थी कि एक लड़का रोटी देने आया। मुझे उसकी सूरत देखकर कुछ प्रेम-सा हुआ।

पूछा—"तुम कौन हो?" उसने कहा—"मेरी माँ रोटी पकाती है।" मैंने कहा—"उनका क्या नाम है?" बोला—"रक़िया।" 'रकिया' नाम सुनकर मुझे सन्देह हुआ कि स्यात् मेरी फूफी है। अन्दर घर मे चली गई। देखा, तो वास्तव में फूफी थीं। फूफीजी ने मुझको पहचाना। गले मिलकर ख़ूब रोईं, और अपने पास ठहरा लिया।

कुछ दिन मैंने उनके साथ काम किया, किन्तु एक दिन उस घर मे कुछ चोरी जाता रहा। गृह-स्वामी ने पुलिस को बुलाकर कहा—"यह अजनबी औरत हमारे यहाँ आई है, इसी का काम मालूम होता है।"

पुलिसवाले मुझको कोतवाली ले गये, और वहाँ मुझे धमकाना आरम्भ किया। एक ने मेरी चोटी पकडकर घसीटा। उस समय मैंने आकाश को देखा और मन में कहा—मैं हिन्दुस्तान के सम्राट् की नवासी हूँ। मैं चोर नहीं हूँ। मुझे यह क्यों सताते हैं? भगवन्! संसार मे मेरा कोई सहायक नहीं है। मैं किससे कहूँ कि मै निरपराध हूँ। यह सोच रही थी कि सिपाही ने जूतियाँ मारना आरम्भ किया। यह अपमान इतना अधिक था कि मैं अचेत हो गई। अन्त में थानेदार ने दया करके मुझे छोड़ दिया और मैं भीख माँगती-माँगती आपके यहाँ आगई।

पीरजी घसियारे

मैंने यह वृत्तान्त सुनकर ठण्डी साँस भरी, और कहा—"संसार मे भी कैसे-कैस परिवर्तन होते हैं, किन्तु ससार-वाले जरा नहीं घबराते। न अच्छे समय का कुछ भरोसा है, न बुरे का। सदा एक-सा समय किसी का नहीं रहता। मनुष्य को न हर्ष के समय इतराना चाहिये, न आपत्ति के समय घबराना चाहिये।"

कुछ दिन हम बहुत हँसी-खुशी मे रहे, किन्तु इतने में मेरी मकतब की नौकरी जाती रही। थोडे-से अपराध पर अलग कर दिया गया। जो लडके मेरे पास आते थे, उन्होंने भी आना छोड़ दिया।

अब फिर जीविका की तंगी हुई। जगह जगह-नौकरी ढूँढ़ने गया, किन्तु कहीं न मिली। लोग कहते कि मियाँ आज-कल बडे-बडे बी० ए०-पास मारे-मारे फिरते हैं—कोई दो कौड़ी को नहीं पूछता। इस दशा में मैं एक दिन हज़रत ख़्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह में दर्शनों के लिये गया। लौटते हुए देखा कि एक घसियारा घोडे पर घास लादे चला जाता है। मैंने रास्ता काटने को उससे बातें करनी आरम्भ की।

पूछा—"भई, यह घास कितने को बिक जायगी ?"

उसने कहा—"तीन-साढ़े तीन रुपये को।"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—"ओफ़्, ओह! भई, इसमे तो बड़ा लाभ है।"

घसियारे ने कहा—"परिश्रम भी तो है। प्रातःकाल चार बजे गया था। अब चार बजे सायंकाल तक इतनी इकट्ठी हुई है।"

मैंने कहा—"जंगल से मुफ़् लाते हो, या कुछ देना पड़ता है?"

उसने कहा—"चालीस रुपये का एक जंगल ठेके पर लिया है। वहीं से लाता हूँ। एक जंगल छः महीने को काफ़ी है। एक दिन एक ओर से खोदता हूँ, दूसरे दिन दूसरी ओर से, तीसरे दिन अन्य दिशा से। इसी तरह यह फेर-धंधा रहता है। जब पहले दिन खुदी हुई जगह को आठ दिन हो-जाते हैं, तो फिर नई घास पैदा होजाती है। आठ आने दैनिक घोड़े का ख़र्च है। तीन रुपये का मकान है। बाक़ी सब घर के काम आता है। मैं हूँ, और एक स्त्री है। यदि बच्चे भी होते, तो इतना परिश्रम न होता। कुछ वे खोदते, कुछ मै खोदता। दोपहर से पहले घोड़े का बोझ हो जाता।"

यह सुनकर मैं घर आया, और सारा वृत्तान्त स्त्री को सुनाया। उसने कहा—"घास खोदने में कुछ बुराई नहीं है। बड़े-बड़े बुजुर्गों ने यह काम किया है।" यह सुनकर मैंने स्त्री का आभूषण बेचकर एक टट्टू मोल लिया, और

जङ्गल में जाकर एक जमीन ठेके पर लेली। आरम्भ में तो कुछ कष्ट मालूम दिया, किन्तु फिर आदत पड़ गई। अब हमतीनों बाप-बेटे दोपहर से पहले घोडा भर लाते हैं, और घास की मण्डी में दूकानदार के हाथ, जिससे ठेका होगया है, खड़े-खडे तीन रुपये को घास बेचकर घर आजाते हैं। फिर मैं मसजिद में जाता हूँ, और शाम तक ख़ुदा की याद में मग्न रहता हूँ। सैकडों स्त्री-पुरुष गण्डे को आते हैं, और मैं उन्हें मुफ़्त तावीज बाँटता हूँ, जिनमें ख़ुदा प्रभाव देता है।

लोग जानते हैं कि मैं घसियारे का काम करता हूँ, और घृणा करने के स्थान में समझते हैं कि मैं कोई बड़ा पहुँचा हुआ फ़क़ीर हूँ, जो जीविका के लिये घास खोदता हूँ। इस कारण उनके दिलों में मेरा बड़ा मान है। इस काम में ७५) रुपये मासिक मिल जाते हैं, और कॉलेज के बी० ए०-पास लोगों से मेरी अच्छी बीत जाती है, जिनको २५) रुपये की ग़ुलामी भी नसीब नहीं होती।

ठेलेवाला शाहज़ादा

सन् १९११ ई० के दरबार में दिल्ली के दिन फिरे। नये शहर की तैयारियाँ आरम्भ हुई। बड़े-बड़े इञ्जीनियरों के मस्तिष्क अपना कौशल दिखाने लगे। अवध के नव्वाबों के पूर्वज मन्सूरअलीख़ाँ सफ़दरजंग के मक़बरे के आस-पास गुम्मा ईंट बनाने और पकाने के कारख़ाने जारी हुए। हज़ारों गरीबों का रोज़गार चमका। पकी हुई ईंटों के ढेर रेल-गाड़ियों और ठेलों मे भरकर 'इम्पीरियल सिटी' के भवनों मे जाने लगे।

११ मई, सन् १९१७ ई० का ज़िक्र है। ठीक दोपहर की धूप और विकल करनेवाली गरमी में एक बूढ़ा ठेलेवाला ख़ानबहादुर शेरमोहम्मद हारून् के भट्टे से ईंटे लेकर दिल्ली जारहा था। सिर पर सूर्य्य की प्रखर किरणे, स.फेद दाढी और मूछों पर मार्ग की धूल, तथा माथे पर पसीना आया हुआ था, जिसमें ईंटों की लाली जमी हुई थी।

पीछे से एक मोटर (सम्भवतः कुतब साहब से) आरही थी। ड्राइवर ने बहुतेरा ही बिगुल बजाया, किन्तु बूढ़े और

बिलबिलाकर चिल्लाई—"ईश्वर के लिए तुम मोटर में आ जाओ, नहीं तो यह गँवार तुमको जान से मार डालेगा।"

यह सुनकर जवान और मोटर-ड्राइवर दोनों मोटर में बैठ गये, और ठेलेवाले को गाली देने लगे। बूढ़ा चुपचाप खड़ा हँसता था, और कहता था—"बस, एक ही वार में भाग निकले! तैमूरी तमाचा खाना आसान नहीं है।"

ठेलेवाला इतना बहरा था कि मोटरवालों की गालियाँ उसने न सुनीं और फिर ठेले पर आन बैठा। मोटर दिल्ली चली गई, और ठेला रायसीने में ईंटें डालने चल दिया।

(२)

रायसीने के थाने में दूसरे दिन दो जख़्मी और कुछ ठेलेवाले जमा थे। वह बूढ़ा ठेलेवाला भी खड़ा था। दारोग़ा-पुलिस ने पूछा—"क्या तुमने इनको जख़्मी किया है?"

बूढ़ा चुप खड़ा रहा। दारोग़ा ने फिर ज़रा बिगड़कर सवाल किया, और कहा—"बोलता क्यों नहीं?" दूसरे ठेले-वाले बोले—"हुज़ूर, बहरा है।" तब एक सिपाही ने बूढ़े के कान के पास जाकर आवाज़ से यही सवाल किया, तो बूढ़े ने जवाब दिया—"हाँ, मैंने मारा है। इसने पहले मुझ पर हमला किया था। चार कोड़े मारे, तो मैंने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया। अमीर-लोग ग़रीबों को घास-फूस समझते हैं। आज से साठ वर्ष पहले इन जख़्मियों के माँ-बाप मेरे

ग़ुलाम थे, और यही नहीं, सारा हिन्दुस्तान मेरा आज्ञाकारी था।"

दारोगा—पुलिस हँसा। उसने कहा—"शायद यह पागल होगया है। बुढ़ापे ने इसकी अक़्ल खोदी है। अच्छा, इसको हवालात में लेजाओ। कल अदालत में चालान किया जायगा। ऐसे पागल को पागलख़ाने भेजना चाहिये।"

(३)

सिटी-मजिस्ट्रेट के यहाँ बूढ़ा ठेलेवाला पुलिस के पहरे में हाज़िर था, और दोनों मुद्दई भी मौजूद थे। कोर्ट-इन्सपेक्टर ने सब घटनायें उपस्थित कीं। अदालत ने प्रतिवादी का बयान लेना चाहा। यह मालूम करके कि वह बहरा है, चपरासी ने चीख़-चीख़कर उसका बयान लिया। बूढ़े ने बयान किया—

"मेरा नाम ज़फ़रसुल्तान है। मैं मिरज़ाभाई बहादुर-शाह-बादशाह का बेटा हूँ। मेरे दादा हिन्दुस्तान के बादशाह मोईनुद्दीन अकबरशाह द्वितीय थे। गदर के बाद मैं हज़ारों आपत्तियों के पश्चात् मुल्कों-मुल्कों फिरता हुआ फिर दिल्ली में आगया, और ठेला चलाने का काम करने लगा। ११ मई, सन् १९१७ ईस्वी, जो ११ मई सन् १८५७ के समान गरम और सख़्त थी, इस घटना की तारीख़ है। मैं बहरा हूँ। मैंने मोटर

की आवाज़ नहीं सुनी। मोटरवालों ने मेरी आयु तथा दशा पर दया नहीं की, और मेरे चार कोड़े मारे। मेरे बदन में जो खून है उसको मार खाने तथा अन्याय सहने की अब तो आदत हो गई है, किन्तु पहले न थी। जिस जगह अदालत की कुर्सी है, उसी स्थान पर गदर से पहले मेरी आज्ञा से अनेक बार बहुत-से बदमाशों तथा उद्दण्डों को दण्ड दिये गये हैं। यद्यपि मेरी आँखो ने ऐसे दृश्य देखना बहुत दिनों से बन्द कर दिया है, किन्तु मेरे हृदय तथा मस्तिष्क ने अभी तक उन आदतों को नहीं भुलाया है। मैं क्योंकर चार कोड़ों को सह सकता था ? मैंने निस्सन्देह बदला लिया, और इन दोनो बहादुर जवानों के सिर फाड़ डाले। यदि आप भद्र पुरुषों का न्याय करना चाहते हैं, तो मैं आपके निर्णय के सन्मुख सर झुकाने को उपस्थित हूँ।"

बूढ़े की वक्तृता सुनकर अदालत में सन्नाटा छा गया। मजिस्ट्रेट साहब, जो योरोपियन थे, क़लम मुँह मे लेकर बूढ़े को देखने लगे, और उनका मुसल्मान-सरिश्तेदार आँखों मे आँसू भर लाया। दोनो वादी भी यह बयान सुनकर सन्नाटे मे रह गये।

अदालत ने हुक्म दिया—"तुमको छोड़ा जाता है; और वादियो पर दस-दस रुपये जुर्माना किया जाता है,—क्योंकि स्वयं उनके बयान से प्रकट है कि उन्होंने नशे की दशा में पहले प्रतिवादी पर हमला किया था।"

इसके बाद मजिस्ट्रेट ने चपरासी क द्वारा बूढ़े शहजादे से पूछा—"क्या तुम्हारी पेन्शन सरकार से नियत नहीं हुई ? तुम ठेले का नीच काम क्यो करते हो ?"

शाहजादे ने जवाब दिया—"मुझे मालूम है कि अँग्रेजी सरकार ने हमारे वंशवालो की पाँच-पाँच रुपये मासिक पेन्शन नियत करदी है। किन्तु मैं प्रथम तो बरसों दिल्ली से अनुपस्थित रहा। इसके अतिरिक्त जब तक हाथ-पाँव चलते हैं, काम करके परिश्रम की जीविका कमाना धर्म समझता हूँ।

जनाब! मुझको ठेले में तीन-चार रुपये दैनिक मिल जाते हैं। दो रुपये दैनिक बैल-इत्यादि का व्यय है, जिसमें घर का किराया भी सम्मिलित है। रुपया-दो-रुपया मुझको बच जाते हैं। मैं पाँच रुपये मासिक लेकर क्या करता ? आजकल मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझको सब प्रकार की स्वतन्त्रता तथा निश्चिन्तता प्राप्त है। जो लोग आपकी कचहरियो मे नौकरियाँ ढूँढते फिरते हैं, तथा बी० ए, एम० ए०-पास होने मे आयु खोते हैं, उनसे मुझ ठेलेवाले की दशा लाख-गुना अच्छी है। ठेला चलाने में कुछ अपमान नहीं है; क्यो कि मैं बैलो पर शासन करता हूँ, स्वय बैल बनकर शासित नहीं बनता।"

(४)

ठेलेवाला शाहजादा पहाड़गंज की मसजिद मे नमाज पढ़ रहा था। उसी के निकट उसका घर था। जब वह नमाज

पढ़ चुका, तो एक मनुष्य उसके पास गया, और बोला—"मैं आज कचहरी में उपस्थित था। मैंने आपके बयान का चरचा सुना था। क्या आप मुझको ग़दर की बातें सुना सकते हैं? क्या आप बता सकते हैं कि आप गदर में और उसके बाद कहाँ-कहाँ रहे, तथा आप पर क्या-क्या आपत्तियें पड़ीं?"

ठेलेवाले ने हँसकर कहा—"क्या आप वे घटनायें सुन सकते हैं? क्या आपको इन झूठी बातों पर विश्वास आ सकता है? मेरा विश्वास है कि जो बात बीत जाये, चाहे वह आनन्द की हो या दुःख की हो, झूठी है। उसका वर्णन् करना झूठ बोलना है। आनेवाले समय वहम हैं, बीता हुआ समय झूठा है। यही समय सच्चा है। मेरा विचार है कि जो समय सामने है, उस पर विश्वास करो, और हँसी-खुशी उसको बिता दो। न भूत-काल की याद दिल मे आने दो, न भविष्य-काल की चिन्ता करो। बस, जो-कुछ समझो, इसी समय को समझो—जो दीखता है, तथा जिसमें श्वास आता जाता है।"

प्रश्न करनेवाले ने कहा—"ये तो आपकी, अपने अनुभव की बातें हैं। आपके हृदय को आपत्तियों तथा आकस्मिक दुर्घटनाओं ने संसार से उदास कर दिया है। मैं तो ग़दर की घटनाये एकत्रित करने के लिये आपसे ये बातें पूछता हूँ। मैंने और भी इसी प्रकार की बहुत-सी घटनाये सङ्कलित

की हैं, तथा आप-बीती घटनाये शाहज़ादों से पूछ-पूछकर लिखी हैं।"

यह सुनकर शाहज़ादा ज़ोर-से हँसा, और बोला—"शायद आप अखबार-नवीस हैं। मैं इन लोगों से बहुत अप्रसन्न हूँ। ये बहुत ही झूठ बोला करते हैं। अच्छा, आप मेरे घर पर चलिये। मैं अतिथि का दिल नहीं तोड़ूँगा, तथा आप जो पूछेंगे, बताऊँगा।"

शाहज़ादा प्रश्न करनेवाले को लेकर अपने घर में लेगया। छप्पर का एक मकान था। बाहर चौक मे दो बैल और एक गाय बँधी हुई थी। अन्दर दालान में एक तख़्त बिछा हुआ था। बराबर एक पलङ्ग था। दोनों घर सफ़ेद चाँदनियाँ बिछी हुई थीं, जिससे निर्धन किन्तु परिश्रमी तथा कमाऊ शाहज़ादे की स्वच्छ-प्रियता प्रकट होती थी। शाहज़ादे ने प्रश्न करनेवाले को तख़्त पर बिठाया, तथा स्वयं रसोई-गृह से खाना लाया, और कहा—"आओ, खाना खालो। फिर बाते करेंगे। खाना यद्यपि एक मनुष्य का था, किन्तु दो प्रकार का शाक, दाल, चटनी और कुछ मिठाई इस बात को प्रकट करती थी कि शाहज़ादा इस दशा में भी तकल्लुफ़ से जीवन व्यतीत करता है, प्रश्न करनेवाले ने बहुत-कुछ अस्वीकृति प्रकट की। शाहज़ादा न माना, और दोनों ने खाना खाया। फिर शाहज़ादे ने स्वयं हुक्क़ा भरा, और प्रश्न करनेवाले के सामने रख दिया। उसने हुक्का न

पीने का उज्र किया, तो उसने कली को आगे रखकर इस प्रकार अपनी रामकहानी आरम्भ की—

"मैं मिरज़ा बाबर का बेटा हूँ। मिरज़ा बाबर बहादुर-शाह के भाई थे। गदर के पहले बहादुरशाह का शासन तो हिन्दुस्तान मे न था, किन्तु प्रत्येक बस्ती में उनके नाम का सम्मान बादशाहों के समान किया जाता था। दिल्ली मे तो प्रत्येक मनुष्य बहादुरशाह तथा उनके वंश का वही आदर-सत्कार करता था, जो शाहजहाँ तथा आलमगीर के समय में होता था।

"मैं अपने बाप का बहुत लाडला बेटा था। यद्यपि उनके और भी सन्तानें थी, किन्तु अपनी माँ का मैं इकलौता था। मेरे पिता का ग़दर से पहले परलोकवास होगया था। जब ग़दर पड़ा, और विद्रोहियों की सेना दिल्ली में घुसी, तो जैसा सितम उसने अँग्रेज़ों और उनकी स्त्रियों तथा बच्चों पर किया, उसके कहने से कलेजा कॉपता है। इसके बाद जब अँग्रेज़ पंजाब की सहायता लेकर दिल्ली आये, और उसको पराजित किया, तो बादशाह-समेत सारा शहर भाग निकला। मेरी माता अन्धी थीं, तथा आये-दिन की बीमारियों से बहुत कमजोर होगई थीं। रथ मे सवार होना भी उनको दूभर था। किन्तु दो स्त्रियों की सहायता से मैंने उनको सवार किया, और स्वयं भी उसमें बैठकर दिल्ली से निकला। बादशाह-आदि तो हुमायूँ के मक़बरे गये थे, किन्तु मैंने

करनाल की राह पकडी, क्योंकि वहाँ मेरे एक मित्र रहते थे, जिनसे दिल्ली में बहुधा भेंट हुआ करती थी। वह करनाल के ज़िले में अच्छे ज़मींदार थे।

"हमारा रथ अजमेरी दरवाज़े से बाहर निकला (असली रास्ता तो लाहौरी दरवाज़ा था, मगर उधर अँग्रेज़ी फ़ौज का डर था) तो देखा, हज़ारों आदमी—औरत-मर्द, बच्चे-बूढे, गठड़ियाँ सरो पर रक्खे, घबराये हुए चले जा हैं। रथ-वाले ने कहा—'गुडगावाँ होकर करनाल चलना चाहिये, जिससे फ़ौजवालो के हाथ से बचाव रहे।' गुडगावाँ तक हम शान्तिपूर्वक चले गये। यद्यपि मार्ग में गूजर-आदि मिले, किन्तु हम बहाने करके उनके हाथों से बच गये। लेकिन गुडगावें से जब करनाल की ओर मुड़े, तो गूजरो के एक झुण्ड ने रथ को घेर लिया, और हमें लूटना चाहा। अभी उन्होंने हाथ डाला था कि सामने से अङ्गरेज़ी फौज के कुछ सिपाही आगये। ये सब गोरे थे। इनको देखकर गूजर तो भाग गये, और वे घोड़े दौड़ाकर रथ के पास पहुँचे। उन्होंने हँसी के ढङ्ग पर अङ्गरेज़ी भाषा में कुछ कहना आरम्भ किया, जिसको मैं नहीं समझा। मेरा मुँह पूर्व की ओर था। पश्चिम की ओर से एक गोरे ने रथ का परदा उठाकर देखा, और माता को अन्धी तथा बूढी देखकर ज़ोर-से हँसने लगा। उसने अपने साथियों से कुछ कहा—जिसको सुनकर वे

सब आगे बढ़ गये, और हमको कुछ कष्ट नहीं दिया।

"जब वे चले गये, तो हम आगे बढ़े, और शाम तक चलते रहे। रात को एक गाँव के पास पड़ाव किया। वहाँ आधी-रात में चोर बैल खोलकर लेगये। रथवान भी कहीं बे-पता हो गया। प्रातःकाल को मैं बहुत चिन्तित हुआ, और गाँववालों से जाकर किराये की गाड़ी माँगी। ये जाट थे। इनका चौधरी मेरे साथ आया, और बोला—'गाडी तो हमारे गॉव मे नहीं हैं, तुम अपनी मॉ को हमारे घर में ठहरा दो। दूसरे गाँव से गाड़ी मँगवा देंगे।' मैंने इसको ग़नीमत समझा, और माता को लेकर चौधरी के घर में चला गया। हमारे पास एक पिटारी थी, और एक सन्दूकचा। इन दोनो में अशरफ़ियाँ और जड़ाऊ ज़ेवर था।

"चौधरी ने घर मे उतारकर और सब सामान रखकर एक आदमी को दूसरे गाँव में गाड़ी के लिये भेजा। थोड़ी देर रौल मची कि अङ्गरेजी फौज आती हैं। चौधरी मेरे पास आया, और बोला—'तुम घर से भाग जाओ। नही तो हम भी तुम्हारे साथ मारे जायेंगे।' मैं बहुत घबराया, और चौधरी से कहने लगा-'अन्धी माँ को लेकर कहाँ जाऊँ? तुम को मेरी दशा पर दया नहीं आती?' यह सुनकर उस जाट ने मेरे एक मुक्का मारा, और कहा—'हम तेरे लिये अपनी गर्दन कटवादें?' मैंने भी उसके थप्पड़ रसीद किया। यह

"जब मध्यान्ह का सूर्य सिर पर आया, तो मेरे सिर के घाव मे ऐसी पीड़ा हुई कि मैं चकराकर गिर पड़ा। होश था, किन्तु उठने और चलने की शक्ति न थी। माता ने मेरा सिर अपनी रानों पर रख लिया, और यह प्रार्थना करनी आरम्भ की--'हे ईश्वर, मुझ पर दया कर। मेरे पापों को क्षमा करदे, और मेरे बच्चे की जान बचा दे। हे ईश्वर, यह अन्धी शाहज़ादी तेरे आगे हाथ फैलाती है। इसको निराश न कर। हमारा तेरे अतिरिक्त कोई नहीं है। आकाश-पृथ्वी हमारे दुश्मन हैं। तेरे सिवा किससे कहूँ? तू जिसको चाहे मान दे, जिसको चाहे अपमान दे। कल हम मुल्कों, हाथो-घोड़ों, तथा लौंडी-गुलामों के मालिक थे—आज उनमें से कुछ भी हमारे पास नहीं। किस बिरते पर संसार-वाले इस असार-संसार में जोने की आशा करते हैं? 'तोबा है। पापों की तोबा है। दया! दया!! हे ईश्वर दया!'

"माता प्रार्थना कर रही थीं कि एक गँवार उधर आ निकला, और बोला— 'बुढ़िया' तेरे पास जो-कुछ हो, डाल दे।" माता बोली—'बेटा, मेरे पास तो सिवाय इस जख्मी बीमार के कुछ भी नहीं है। यह सुनकर गँवार ने एक लठ माता के सिर पर मारा। लठ के पड़ते ही माता के मुँह से एक चीख निकली, और उन्होंने कहा—'हाय ज़ालिम! मेरे बच्चे को न मारियो।' मैं साहस करके उठा, किन्तु फिर चकराकर गिर पड़ा, और बेहोश होगया। गँवार ने मेरे और माता के

कपड़े उतार लिए। मुझे होश आया तो गँवार चला गया था, और हम दोनों बिल्कुल नंगे पड़े थे। माता दम तोड़ रही थी। मैंने उनसे पूछा—'माताजी, क्या हाल है?' उन्होंने बहुत उखड़ी-उखड़ी बातों में कहा—'मियाँ, मरती हूँ। मियाँ को खुदा के सुपुर्द! आह! कफन भी न मिला। अरे, क़ब्र भी न मिलेगी। मैं हिन्दुस्तान के बादशाह की भावज हूँ।' और 'ला अला अल्लाह'* कहा और मर गई। मैंने वहीं से रेता समेटा, और उस असहाय लाश को खाक में छिपा दिया। स्वयं भी कठिनता से घिसट-घिसटकर एक वृक्ष के नीचे जाकर लेट गया। थोडी देर में एक फौजी सवार वहाँ से गुज़रा, और मुझको देखकर निकट आया। मैंने सारा वृत्तान्त उससे कहा। उसने दया की, और कमर का रूमाल खोलकर मुझको दिया। जिससे मैंने तहबन्द बाँधा। इसके बाद उस सवार ने मुझको उठाकर घोडे पर अपने पीछे बिठा लिया, और अपनी छावनी में लेगया। वहाँ उसने मेरा इलाज कराया, जिससे मेरे ज़ख्म अच्छे होगये। फिर मैं उसकी सेवा करने लगा। यह मुसलमान सवार बहुत ही अच्छे स्वभाव का था। इसका मकान पटियाले में था। उसके साथ कुछ दिन तो मैं पटियाले मे रहा, और फिर फ़क़ीर होकर एक शहर से दूसरे शहर फिरने लगा। जब बम्बई पहुँचा, तो खैराती क़ाफले के साथ मक्का-

---

* ईश्वर एक है।

मौज़्ज़मा चला गया। वहाँ दस बरस बिताये। फिर मदीने-शरीफ़ में हाज़िरी दी, और वहाँ भी पाँच बरस व्यतीत किये। इसके बाद शाम और बैतुल-मुक़द्दस की यात्रायें करके हलब होकर बग़दाद-शरीफ़ गया। दो साल वहाँ काटे। बग़दाद से कराँची आया, और यहाँ से दिल्ली आगया; क्योंकि दिल्ली की याद मुझे सर्वत्र विकल किये रखती थी।

"यहाँ रेल पर मैंने मज़दूरी करना आरम्भ की, जिसमें मुझको खाने-पीने के बाद कुछ बचत होने लगी। दो साल में मेरे पास तीन-सौ रुपये होगये, तो मैंने एक ठेलेवाले के साझे में एक ठेला बना लिया। उसकी आमदनी से धीरे-धीरे साझी का साझा पृथक् करके पूरा ठेला अपना ही बना लिया, और अब उसी पर मेरे जीवन का निर्वाह है।"

प्रश्न करनेवाले ने कहा—"बहरापन कब हुआ? इससे तो आपको अकेले में बहुत कष्ट उठाना पड़ता होगा।" शाहज़ादे ने हँसकर उत्तर दिया—"ख़ुदा का शुक्र है—कुछ कष्ट नहीं होता। सारे संसार के दोष सुनने से कान बन्द हैं। गाँव में जब जाटों ने मारा था, उसी समय मस्तिष्क पर ऐसी चोट आई, जिससे कान की शक्ति जाती रही। अब केवल बाँयें कान से कुछ सुन सकता हूँ—दायाँ बिलकुल व्यर्थ है।"

प्रश्न करनेवाले ने यह उपदेशप्रद वृत्तान्त सुनकर कहा—"क्या मैं इसको अपनी पुस्तक में लिख दूँ ?" शाहज़ादे ने कहा—"अवश्य लिख दो—साथ में यह भी लिख देना कि प्रत्येक बीत जानेवाली बात, प्रत्येक बीत जानेवाला समय और प्रत्येक बीत जानेवाला दुःख-सुख निस्सार है, किन्तु उसमें उपदेश अवश्य है।"

बहादुरशाह की पोती की कहानी।

(उसी की ज़बानी)

ग़दर मे मेरी आयु सात वर्ष की थी। माताजी मुझको तीन वर्ष का छोड़कर मर गई थीं। मैं पिता के पास रहती थी। चौदह वर्ष का मेरा एक भाई जमशैदशाह-नामक था, किन्तु हाथ-पाँव के उठान से बीस वर्ष का मालूम होता था। पिताजी अन्धे होगये थे, तथा सदैव घर में बैठे रहते थे। ड्योढ़ी पर चार नौकर और एक दारोगा, घर में तीन बाँदियाँ और एक मुग़लानी काम करती थीं। हज़रत बहादुरशाह हमारे रिश्ते के दादा होते थे, और हमारा सब खर्च बादशाही खज़ाने से मिलता था। हमारे घर में एक बकरी पली हुई थी। एक दिन मैंने उसके बच्चे को सताना आरम्भ किया। बकरी ने बिगड़कर मेरे टक्कर मार दी। मैंने क्रोध में चिमटा गरम करके बकरी के बच्चे की आँखें फोड़ डाली! वह बच्चा तड़प-तड़पकर मर गया।

कुछ दिन के बाद ग़दर पड़ा। बादशाह के निकलने के साथ हम भी शहर से निकले। पालकी में सवार थे, और

जमशैद-भाई घोड़े पर साथ-साथ थे। दिल्ली-दरवाजे से निकलते ही फ़ौजवालों ने पालकी पकड़ ली। भाई को भी बन्दी करना चाहा। उन्होंने तलवार चलाई। एक अफ़सर को जख्मी किया। अन्त में जख्मों से चूर होकर गिरे। सामने दो नोकदार पत्थर पड़े थे। वे आँखों में गुम गये, और भाई ने चीखें मार-मारकर थोड़ी देर में जान देदी। भाई का चीत्कार सुनकर पिताजी भी पालकी से नीचे उतर आये, और टटोल-टटोलकर लाश के पास गये। तब पत्थर से टकराकर सर लहू-लुहान कर लिया और उनके प्राण-पखेरू भी वहीं उड़ गये।

इसके बाद फौज-वालों ने हमारा सब सामान लेलिया और मुझको भी पकड़ लिया। मैं चलते वक्त बाप और भाई की लाश से चिपटकर विवश ख़ूब रोई, और उनको बे-कफ़न और बे-क़ब्र के छोड़कर फ़ौज के साथ चली गई।

एक देसी सिपाही ने अफ़सर से मुझे माँग लिया, और मुझको अपने घर, जो पटियाले की रियासत में था, लेगया।

इस सिपाही की पत्नी का स्वभाव बहुत बुरा था। वह मुझसे बरतन मँजवाती, मसाला पिसवाती, झाड़ू दिलवाती, और रात को पाँव दबवाती।

एक रात जबकि मैं दिन-भर के परिश्रम से थक गई थी, तो पाँव दबाने में ऊँघ आगई। इस पर उस जल्लादनी ने चिमटा गरम करके मेरी भवों पर रख दिया, जिससे पलकें तक झुलस

गईं, और भंवों की चरबी निकल आई। मैंने पिता को पुकारना आरम्भ किया, क्योंकि मुझे इतनी समझ न थी कि मरने के बाद फिर कोई नहीं आया करता। जब पिता ने कुछ उत्तर न दिया, तो मैं उस औरत के डर के मारे सहम-कर चुप हो गई। किन्तु इस पर भी उसको दया नहीं आई और बोली कि पाँव दबा। जख्मो की तकलीफ में मुझको नींद न आती थी, और पैर भी न दब सकते थे। किन्तु दुःखम-सुखम मैंने इसी दशा मे पाँव दाबे।

प्रातःकाल मसाला पीसने में मिरचों का हाथ जख्मों के लग गया। इस समय मुझको सुध न रही, और मैं जमीन पर मछली की तरह तड़पने लगी। किन्तु निर्दयी औरत को फिर भी कुछ ख्याल न आया, और बोली—"चल मक्कार, काम से जी चुराती है।" कहकर पिसी हुई मिरचे जख्मों पर मल दी। उस समय मैं वेदना के कारण अचेत होगई, तथा रात तक इसी दशा में रही। प्रातःकाल के समय आँख खुली तो बेचारा सिपाही मेरे जख्मों को साफ करके दवा लगा रहा था।

थोड़े दिन के बाद सिपाही की पत्नी मर गई। उसने नई शादी की। नई पत्नी मुझ पर बड़ी दयालु थी। उसी के घर में मैं जवान हुई, और उसी ने मेरा विवाह एक ग़रीब आदमी से कर दिया। दो वर्ष तक मेरा पति जीवित रहा, उसके बाद मर गया। विधवा होकर मैं दिल्ली आई, क्योंकि

बेचारी शाहज़ादी का खाको छपरखट

गुलबानू, ईश्वर रक्खे, पन्द्रह वर्ष की हुई। यौवन ने अपनी बहार दिखानी आरम्भ की। आप बहादुरशाह के भूत-पूर्व युवराज, मिरजा दाराबख्त की प्यारी पुत्री हैं। बाप ने चाव-चोचले से पाला है। जिस दिन से वह परलोक सिधारे हैं, महल में गुलबानू का लाड़-प्यार पहले से भी अधिक होने लगा। माता कहती हैं—"निगोड़ी के नन्हे-से दिल को बहुत दुःख पहुँचा है। इसका दिल इस प्रकार रक्खो कि बाप का दुःख न करे, और उनके प्यार को भूल जाय।"

उधर दादा अर्थात् बहादुरशाह-बादशाह की यह दशा है कि पोती के लाड में किसी बात की कमी नहीं करते। नवाब ज़ीनतमहल उनकी लाड़ली और प्यारी पत्नी हैं। जवाँबख्त इन्हीं के पेट का राजकुमार है। यद्यपि मिरजा दाराबख्त के मर जाने के कारण युवराज का पद मिरजा फ़खरू को मिला है, किन्तु जवाँबख्त के सामने युवराज को

भी कुछ पूछ नहीं है, और ज़ीनतमहल अन्दर ही अन्दर अँग्रेज़ी अफ़सरों से जवाँबख़्त के सिंहासनारोहण की बात-चीत कर रही हैं। जवाँबख़्त का विवाह इस धूम से होता है कि मुग़लों के अन्तिम इतिहास में इस धूम-धड़ाके का उदाहरण नहीं मिलता। ग़ालिब तथा ज़ौक़ सेहरे लिखते हैं :

यह सब-कुछ था, और जवाँबख़्त और ज़ीनतमहल के आगे किसी का दीपक न जलता था, किन्तु गुलबानू की बात सब से निराली थी। बहादुरशाह को इस लड़की से जो अनुराग था, तथा जैसा सच्चा प्रेम वह इस अनाथ राजकुमारी से करते थे, वह बात ज़ीनतमहल तथा जवाँबख़्त को भी प्राप्त नहीं थी।

अतएव, इससे अनुमान हो सकता है कि गुलबानू किस ऐश्वर्य तथा लाड-प्यार से जीवन व्यतीत करती होगी। होने को मिरज़ा दाराबख़्त के और भी बच्चे थे, किन्तु गुलबानू और उसकी माता से उनको अगाध प्रेम था। गुलबानू की माँ एक डोमनी थी, और मिरज़ा उसको सब बेगमों से अधिक प्यार करते थे। जब वह मरे हैं, तो गुलबानू बारह साल की थी। मिरज़ा पूज्य नसीरुद्दीन 'चिराग़दिल्ली की दरगाह में, जो दिल्ली से छः मील की दूरी पर पुरानी दिल्ली के खँडहरों में है, दफ़न किये गये थे। गुलबानू प्रति-मास माता को लेकर बाप की क़ब्र देखने जाया

करती थी। जब जाती, क़ब्र को लिपटकर रोती, और कहती—"पिता, हमको भी अपने पास लिटाकर सुलालो। हमारा जी तुम्हारे बिना घबराता है।"

जब गुलबानू ने पंद्रहवें वर्ष मे पग रक्खा, तो यौवन ने बचपन की हठ तथा चञ्चलता तो विदा करदी, किन्तु दिल छीनने की शोख़ियाँ इस सितम को ढाईं कि महल का बच्चा-बच्चा शरण माँगता था। सोने के छपरखट में दुशाला ताने सोया करती थी। सायकाल के दीपक जले, और बानू छपरखट पर पहुँची। माँ कहती—"दीवे में बत्ती पडी, लाड़ो पलँग चढ़ी;" तो वह मुस्कराकर अँगड़ाई और जँभाई लेकर सर के बिखरे हुए बालो को माथे से समेटकर कहती—"तुम व्यर्थ कोयलों पर लोटी जाती हो।" माँ कहती थी—"ना बन्नो, मैं जलती नही। चैन से आराम करो, ईश्वर तुमको सदैव सुख की नींद सुलाता रहे। मेरा मतलब तो यह है कि अधिक सोना मनुष्य को रोगी कर देता है। तुम शाम को सोती हो, तो सवेरे जरा जल्दी उठा करो। किन्तु तुम्हारा तो यह हाल है कि दोपहर हो जाता है, सारे घर में धूप फैल जाती है, लौंडियाँ डर के मारे बात तक नहीं कर सकती कि बानू की आँख खुल जायगी। ऐसा भी क्या सोना? आदमी को कुछ घर का काम भी देखना चाहिये। अब ईश्वर चिरंजीव करे, तुम जवान हुईं, पराये घर जाना है—अगर यही आदत रही, तो वहाँ क्योकर निवाह होगा?"

गुलबानू माँ की यह वक्तृता सुनकर बिगड़ती और कहती—"तुमको इन बातों के सिवाय कुछ और भी कहना आता है? हमसे न बोला करो। तुम्हें हम दूभर होगये हों, तो साफ़-साफ़ कह दो—हम दादा (बहादुरशाह) के पास जा-रहेंगे।"

प्रेम की पाठशाला

उन्हीं दिनों का वर्णन है। राजकुमार ख़िज़्रसुलतान का बेटा, मिरज़ा दावरशिकोह, गुलबानू के पास आने-जाने लगा। क़िले मे आपस में परदे का रिवाज न था, अर्थात् राज्य वंश के लोगों मे आपस में परदा न होता था। इस कारण मिरज़ा दावरशिकोह के आने-जाने में रोक-टोक नहीं होती थी।

पहले तो गुलबानू उनकी बहन और वह उसका भाई था, चचा-ताया के दो बच्चे समझे जाते थे। किन्तु बाद में प्रेम ने एक और सम्बन्ध पैदा किया। मिरज़ा गुलबानू को कुछ और समझते थे, और गुलबानू प्रत्यक्ष सम्बन्ध के अतिरिक्त उनको किसी और सम्बन्ध की दृष्टि से देखती थी।

एक दिन प्रातःकाल के समय मिरज़ा गुलबानू के पास आए, तो देखा—बानू स्याह दोशाला ओढ़े, सुनहरी छपर-खट में स़फेद फूलों की सेज पर पाँव फैलाए, अचेत पड़ी सोती है। मुँह खुला हुआ है, अपनी ही बाँह पर सर

रक्खा है, तकिया अलग पड़ा है, और दोनों लौंडियां मक्खियाँ उड़ा रही हैं।

दावरशिकोह चाची के पास बैठकर बातें करने लगा, किन्तु कनखियों से गुलबानू की यह अचेतावस्था देखता जाता था। अन्त में न रहा गया, और बोला—"क्यों चची! बानू इतना दिन-चढ़े तक क्यों सोती रहती है? धूप फैल गई। अब तो उनको जगा देना चाहिये।" चची ने कहा—"बेटा, बानू के स्वभाव को जानते हो? किसकी शामत आई है, जो उन्हें जगाये! आफ़त टूट पड़ेगी।"

दावर ने कहा—"देखिये! मैं जगाता हूँ। देखूँ, क्या करती हैं?" चची हँसकर बोली—"जगादो, तुमसे क्या कहेंगी। तुम्हारा तो बड़ा लिहाज़ करती हैं।"

दावर ने जाकर तलवे में गुदगुदी की। बानू ने अँगड़ाई लेकर पाँव समेट लिया, और विवश आँख खोलकर कोप-दृष्टि से पाँयती की ओर देखा। उसका विचार था कि किसी लौंडी ने शरारत की है—उसको इस गुस्ताख़ी का दण्ड देना चाहिये। किन्तु जब उसने ऐसे व्यक्ति को—जिससे स्वयं उस का दिल प्रेम करता था—सामने खड़ा देखा, तो लज्जा से दुशाला मुँह पर डाल लिया, और घबराकर उठ बैठी। दावर ने इस होश उड़ानेवाले दृश्य को दिल थामकर देखा, और बोला—"लो चची, मैंने बानू को जगा दिया।"

प्रेम ने उन्नति की। प्रेम की पाठशाला की वर्णमाला समाप्त होकर मिलन तथा वियोग का पाठ पढ़ा जाने लगा, तो गुलभानू की माँ को सन्देह हुआ, और उसने दाराशिकोह का अपने घर आना बन्द कर दिया।

ग़दर के नौ महिने बाद

चिरागदिल्ली की दरगाह के एक कोने में एक सुन्दर रमणी, फटा हुआ कम्बल ओढ़े, रात के समय 'हाय-हाय!' कर रही थी। शरद्-ऋतु का मेंह धुवाँधार बरस रहा था। तेज़ हवा के झोंके से बौछार उस जगह को तर कर रही थी, जहाँ उस रमणी का बिस्तर था।

यह स्त्री बहुत बीमार थी। पसली के दर्द, बुखार और असहाय दशा में अकेली पडी तड़पती थी। बुखार की बेहोशी में उसने आवाज़ दी—"गुलबदन, अरी ओ गुलबदन, मुरदार! कहाँ मर गई? जल्दी आ, और मुझे दुशाला उढ़ा जा। देख, बौछार अन्दर आती है। परदा छोड़ दे, रोशनक, तू ही आ—गुलबदन तो कहीं मर गई! मेरे पास कोयलों की अँगीठी ला, पसली पर तेल मल। अरे! दर्द से मेरा साँस रुका जाता है।"

जब कोई इस आवाज़ पर उसके पास न आया, तो उसने मुँह पर से कम्बल हटा लिया, और चारो ओर देखा। अँधेरे दालान में मट्टी के बिछौने पर अकेली पडी थी। चारों

ओर घुप अँधेरा छाया हुआ था, मेंह सन्नाटे से बरस रहा था। बिजली चमकती थी तो एक सफ़ेद क़ब्र् की झलक दिखाई देती थी, जो उसके बाप की थी।

यह दशा देखकर उस स्त्री ने हाथ खींचो, और कहा—"बाबा ! बाबा ! मैं तुम्हारी गुलबानू हूँ। देखो, मैं अकेली हूँ। उठो, मुझे बुख़ार चढ़ रहा है। पसली में ज़ोर का दर्द हो रहा है। मुझे सर्दी लग रही है। मेरे पास इस फटे कम्बल के अतिरिक्त ओढ़ने को कुछ नहीं। मेरी माता मुझसे बिछुड़ गई। मैं महलों से निकाल दी गई। बाबा, अपनी क़ब्र में मुझको बुलालो। मुझको डर लगता है। कफ़न से मुँह निकालो, और मुझको देखो। मैंने परसों से कुछ नहीं खाया है। मेरे बदन में इस गीली जमीन के कङ्कर चुभते हैं। मैं ईंट पर सर रक्खे लेटी हूँ। मेरा छपरखट क्या हुआ ? मेरा दुशाला कहाँ गया ? मेरी सेज किधर गई ? बाबा, उठो जी—कब तक सोओगे ? हाय दर्द ! ओफ़् ! साँस क्योंकर लूँ ?" यह कहते-कहते उसको बेहोशी-सी होगई, और उसने देखा कि मैं मर गई हूँ, और मेरे पिता मिरज़ा दाराबख़्त मुझको क़ब्र में उतार रहे हैं, और रो-रोकर कहते हैं—

"यह इसका मट्टी का छपरखट है !"

आँख खुल गई और बेचारी बानू एड़ियाँ रगड़ने लगी। प्राण निकलने की दशा आरम्भ होगई, और वह कहने लगी—

दो राजकुमार जेलखाने में

मिरज़ा तेग़ज़माल की आयु अब अस्सी बरस की है। ग़दर सन् ५७ में वह उन्नीस वर्ष के गबरू जवान थे। उनको ग़दर से पहले की बातें ऐसी याद हैं, जैसे अभी कल की बातें हों।

तेगज़माल द्वितीय युवराज मिरज़ा फख़्रो के लड़के हैं। मिरज़ा दाराबख़्त बहादुरशाह के पहले युवराज थे, किन्तु जब उनका परलोकवास हुआ, तो मिरज़ा फख़्रो युवराज नियत हुए।

मिरज़ा फख़्रो बड़े ही धार्मिक राजकुमार थे। यदि दिल्ली का सिंहासन बाक़ी रहता, तो यह हिन्दुस्तान के बहुत-ही नेक बादशाह माने जाते। किन्तु युवावस्था के पागलपन में बड़े-बड़े धार्मिक पुरुषों के पाँव डगमगा जाते हैं, मिर्ज़ा फख़्रो तो भारत-सम्राट् के पुत्र थे—जिनको यौवन की आँख-मिचौलियाँ करने मे किसी का भय तथा लज्जा न थी। इसके अतिरिक्त उस वक़्त लाल क़िला चरित्र-भ्रष्टता के लिये इतना बदनाम था कि जिसकी कुछ सीमा नहीं। फिर यदि मिरज़ा

फख्रू से कोई भूल होगई, और वह युवावस्था की मस्ती को न रोक सके, तो कुछ अधिक आक्षेप-योग्य बात नही है।

मिरज़ा तेगजमाल इसी पहली और गुप्त, किन्तु अत्यन्त मनोरञ्जक भूल का परिणाम हैं। उनके बाद उनकी माता को कोई सन्तान नहीं हुई। मिरज़ा फरख़न्दाजमाल आदि अन्य सन्तान उनकी विवाहिता पत्नी से हैं। यही कारण है कि बृटिश गवर्नमेण्ट ने बड़ी पेन्शन का अधिकारी मिरज़ा फ़रख़न्दाजमाल को ठहराया, जिनको डेढ़-सौ रुपया मासिक मिलता है, और तेगजमाल को पाँच रुपये की पेन्शन भी न मिली।

तेगजमाल बड़े ही प्रसन्न-वदन मनुष्य हैं। कहते हैं— पेन्शन होने-न-होने का उन्हे किञ्चित् भी दु ख नहीं है, और वह अपने माता-पिता के गुप्त प्रेम-सम्बन्ध का इस प्रकार वर्णन् करते हैं, मानो उनका इस प्रेम के परिणाम से कोई सम्वन्ध ही नहीं है।

तेगजमाल कहते हैं—"जब यह प्रेम-सम्बन्ध आरम्भ हुआ था, तो माताजी की आयु सोलह वर्ष की थी, और पिताजी तेरह वर्ष से कुछ अधिक की आयु रखते थे। यदि पूछा जाय कि तेरह वर्ष का बच्चा सोलह वर्ष की स्त्री से क्योंकर प्रेम कर सकता है, तो कहा जा सकता है कि उसी प्रकार, जैसे अस्सी वर्ष का बूढा सोलह वर्ष की अल्पायु स्त्री से प्रेम का दम भरा करता है।

"हम मुगलों में बच्चे बहुत जल्दी जवान होजाते थे। लड़कियाँ तो कभी-कभी ग्यारह वर्ष की आयु ही में यौवन के आगमन की घोषणा कर देती थीं, और लडके भी बारह-तेरह वर्ष की आयु में प्रेम और उसके परिणाम का विचार करने लगते थे। मैं स्वयं जब बारह वर्ष का था, तो आजकल के अठारह वर्ष के युवाओं से अधिक जोश अपने अन्दर पाता था।

"अम्मा-जान एक कहार की लड़की थीं। नानी-अम्मा को—जो हज़रत अकबरशाह द्वितीय की आँखों में चढ़ी हुई थी, महल की कहारियों में सब से अधिक रूपवती कहारी कहा जाता था। किन्तु जो रूप तथा हाव-भाव अम्मा-जान रखती थी, वह नानी-अम्मा के स्वप्न में भी न आये होंगे।

"होने को तो अम्मा-जान शाही महल की नौकर थीं, किन्तु इनका निवास बहुधा ख़ानम के बाज़ार में रहता था, जहाँ नानी-अम्मा, नाना-अब्बा तथा हमारी ननिहाल के सब कहार रहते थे।

"एक दिन की बात है, अब्बाजान (पिता) ड्योढ़ी के दारोगा के साथ कमानें ठीक कराने ख़ानम के बाज़ार चले गये। वहाँ उन्होंने कहीं अम्माजान को देख लिया। देखते ही जी-जान से आसक्त होगये। घर आये, तो अटवाटी-खटवाटी लेकर पड़ गये, और रोना आरम्भ कर दिया। बहुतेरा लोग पूछते हैं कि मियाँ कैसी तबियत है? दादी-

अम्मा कहती थीं—'बेटा, किसी ने कुछ कहा हो तो सुनादो, यदि कोई बात इच्छा के विरुद्ध हुई हो, तो मुझे बतादो, मैं उसका प्रतिकार करूँ।' किन्तु यह तो प्रेम के सताये हुये थे—एक बात मुँह से न कहते थे, और चुपचाप पड़े रोते थे।

"अन्त में धीरे-धीरे यह बात खुल गई, और महल में इस बात की चरचा और दिल्लगी होने लगी। बेगमें अब्बा-जान को छेड़ने लगीं, और आपस की लड़कियों मे भी इशारे होने और तुक्के कसे जाने लगे। धीरे-धीरे नानी-अम्मा को पता हुआ, तो उन्होंने अम्मा-जान को महल में बुला लिया, और दादी-अम्मा की ड्योढ़ी पर हाज़िरी लिखादी। किन्तु अब्बाजान की यह दशा थी कि वह विशेष प्रबन्ध होते हुए भी अम्माजान से बात-चीत करते हुए लजाते थे। अम्मा-जान कभी अकेले-दुकेले मिल जातीं, तो अब्बाजान का हाथ पकड़ लेतीं, और कहतीं—"साहब-आलम, आप उदास क्यों रहते हैं ?" अब्बाजान हाथ छुड़ाकर भाग जाते थे, और अम्माजान की ओर ध्यान न देते थे।

"प्रत्यक्ष मे तो यह दशा थी, परोक्ष का पता नहीं क्या हुआ, और मिरज़ा तेगजमाल क्योंकर पैदा होगये ? जन्म के समय मेरी माता सत्रह वर्ष की तथा पिता साढ़े चौदह वर्ष के थे।

"दादी-अम्मा ने बहुत चाहा कि अब इस कहारी के यहाँ मेरा पोता पैदा होगया है, इस कारण अब यह महलों

में बेगमो के समान रहे, किन्तु नानी-अम्मा ने इसको स्वीकार न किया, और अम्माजान फिर वही ख़ानम के बाज़ार में रहने लगी। जब हम छः वर्ष के हुए, तो लाल क़िले मे अपनी बाप के पास आकर रहने लगे। भाई, हम कहार हैं ननिहाल की ओर से, और बादशाह हैं—दुधियाल के सम्बन्ध से। वहाँ भी मनुष्यों का बोझ उठाते थे, और यहाँ भी। हमारी समानता कौन इस संसार मे कर सकता है? क्योंकि हमारा जीवन ईश्वर के प्राणियो का बोझ तथा सर्व-साधारण की सेवा करने में बीतता है।

ग़दर के बीस वर्ष बाद

"गदर के दिनों मे अपनी माता के साथ भागकर हम शाहजहाँपुर ले गये थे, जहाँ हमारी ननिहाल का पुराना परिवार रहता था। क़िले की दशा देखकर मैंने राजकुमारों का साथ छोड दिया, और माता के पास चला गया, क्योंकि राजकुमारों का जीवन उन दिनों दो कौडी के बराबर भी न था। मुझे जान की ख़ैर इसी में दीखी कि कहारो में जाकर रहूँ, और कहार कहाऊँ।

"माताजी के पास इतनी सम्पत्ति थी कि हमने शाहजहाँपुर में जाकर एक दुकान करली। बीस वर्ष बडे आनन्द से कटे।

"मैं हलवाई की दुकान करता था। एक दिन किसी पठान ने मिठाई की बुराई करके मुझको गाली दी। मैं राज्य-वंश

का मुगल, गाली क्यों कर सहता ! लोहे का खपचा उठाकर पठान साहब के मारा, जिसने वह चकराकर गिर पड़ा, और पाँच मिनट के अन्दर तड़पकर मर गया।

"मैं पकड़ा गया। बहुत दिनों तक मुकदमे और हवालात के झमेले में पड़ा रहा। अन्त में १४ वर्ष की कैद की सजा मिली।

बरेली का जेलखाना

"पहले दिन जब मैं जेलखाने अन्दर के आया, तो मुझे अपने कैद होने का कुछ भी दु ख तथा चिन्ता न थी, क्योंकि आरम्भ से सदैव निश्चिन्त रहने का स्वभाव था, और दु ख मेरे पास कभी न फटकता था। कैद की आज्ञा सुनने के बाद भी प्रसन्न रहा। जब माताजी मिलने आईं, और रोने लगीं, तो मैंने हँसकर कहा—'रोती क्या हो ? दुकान में इतनी मिठाई छोड़ आया हूँ, जो कई महीनों तक खाती रहोगी।'

"माताजी बोलीं—'तुझे तो हर वक्त हँसी सूझती है। मेरा कौन वारिस है, जो चौदह बरस तक खबर लेगा। तेरे दम की बदौलत इस परदेश में बीस बरस काट दिये, नहीं तो दिल्ली की-सी इस गाँव में बात कहाँ ?"

"मैंने उत्तर दिया—'जब पिता का सर्वस्व नष्ट होगया, बड़ी-बड़ी हवेलियें मिट्टी में मिल गईं, और हमारे राजकुमार भाई तख्त से तख्ते पर आगये, तो हम किस गिनती में हैं ? चौदह वर्ष की तो बात ही क्या है ?—पलक-

मारते बीत जायेंगे, और मैं तुम्हारे पास आजाऊँगा। ज़रा मेरी स्त्री का ध्यान रखना। उसका हृदय तुम्हारे दुर्व्यवहार से मैला न हो। तुम्हारा रानियों का-सा स्वभाव है, और वह बेचारी केवल एक कहारी है। कृपा करके उससे रानियों के समान व्यवहार न करना।'

'माताजी ये बातें सुनकर हँसने लगीं, और यह कहती हुई चली गईं—'मालूम नहीं, तू इतना निर्लज्ज और ढीठ क्यों है? ख़ैर—ला, ईश्वर को सौंपा।'

"जिस समय मुझको जेलख़ाने के कपड़े पहनने को दिये गये, तो मैंने हँसी से कहा, 'इस जाँघिये को रहने दीजिये। मुझको अपना पाजामा इससे अधिक प्यारा है।'

"ये बातें बरक़न्दाज़ कब सहन कर सकता था? उसने दो-तीन डण्डे जमाये, और कहा, 'यह तुम्हारी नानी-अम्मा का घर नहीं है, जो दिल्लगी की बातें करते हो!'

"मैंने डण्डे खाकर भी हँसी से उत्तर दिया, 'भाई, नानी-अम्मा का घर ख़ानम के बाज़ार में था, और वह मौहल्ले के साथ खुदकर बराबर होगया। दादी-अम्मा का घर लाल क़िले में था। उसमें भी अब गोरे रहते हैं। मैं तो इसको सुसराल समझकर आया था। वहाँ जूतियाँ तो मारा करते हैं, किन्तु डण्डे मारने कभी नहीं सुने। तुम मेरे साले हो, या सुसरे!'

"बरकन्दाज़ आग होगया, और उसने दो-तीन

क़ैदियों की सहायता से मुझको इतना मारा कि मैं अचेत होकर गिर पड़ा। होश आया, तो देखा कि एक कोठड़ी के अन्दर लेटा हुआ हूँ, और बरक़न्दाज़ सामने खड़ा है। मैंने कहा—'जनाब, मारने का शुगन हो चुका। अब अपनी बहन को बुलाइये, जो मुझको खाना दे, और चोट पर हल्दी-चूना लगाये।'

"बरकन्दाज़ को विवश हँसी आगई, और उसने कहा—'तुम आदमी हो, या पत्थर? किसी बात का तुम पर प्रभाव नहीं पड़ता। मियाँ, यह जेलख़ाना है। यहाँ ये दिल्ल-गियें नहीं चल सकतीं। तुमको चौदह वर्ष काटने हैं। सीधे होकर रहोगे, तो ठीक है, नहीं तो पिटते-पिटते चौदह दिन के अन्दर मर जाओगे।'

"मैंने कहा—'मरने के बाद भी आदमी को क़ब्र के जेलखाने में जाना पड़ता है, किन्तु मुझको मुर्दे पर बड़ा क्रोध आता है कि वह क्यों चुपचाप कफ़न ओढ़कर क़ब्र में चला जाता है। मैं तो मरने के बाद भी चुप न रहूँगा, और जो मनुष्य मेरे पास रहेगा, उसको भी ऐसा ही बना दूँगा कि यदि मरे तो भी चुपका न रहे, प्रत्युत् हँसता-बोलता क़ब्र में चला जाय। यदि तुमको सन्देह हो, तो अभी मरकर देखलो, या कहो तो मैं मार डालूँ।'

"बरक़न्दाज़ ने समझा कि कोई पागल है, और हँसता हुआ बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद मुझको चक्की-घर

में लेगये, जहाँ एक चक्की पर दो आदमी खड़े होकर आटा पीसते थे। मेरी चक्की का साथी एक बुड्ढा आदमी था, और स्यात् नया ही बन्दी होकर आया था; क्योंकि फूट-फूटकर रो रहा था। मैंने पहले तो झुककर उसको एक फ़र्शी सलाम किया, और फिर बोला—'नाना-अब्बा, आप रोते क्यों हैं? सेवक एक दोगला आदमी है,—आधा तैमूर राजकुमार और आधा कहार;—जब आपके साथ चक्की का काम करेगा, तो एक तीसरी शाखा और लग जायगी, और वह है—पिसनहारा।'

"बड़े मियाँ ने मेरी बात पर कुछ ध्यान न दिया। उनको अपनी दशा का इतना दुःख था कि अन्त में मुझ पर भी उसका प्रभाव पड़ा, और मैंने कहा—'आप बैठे जायें। मैं अकेला चक्की चला लूँगा, और आपके हिस्से का भी पीस डालूँगा।'

"उन्होंने इसका भी कुछ उत्तर न दिया, और खड़े रहे। किन्तु जब बरकन्दाज़ ने उनकी सफ़ेद कतरी हुई डाढ़ी पकड़कर एक तमाचा मारा, और कहा—'बस, रो चुका। काम कर!' तो बेचारे ने आकाश को देखा, और, विवश हो, चिल्लाने लगा।

"उसकी इस दशा का मुझ पर इतना प्रभाव पड़ा, कि मैं सब दिल्लगी भूल गया, और उसके साथ चक्की चलाने लगा।

"कई दिन यही दशा रही। मैं बहुत-कुछ उनसे बातें करता था, किन्तु वह उत्तर न देते थे और रोते रहते थे। आठ दिन बाद उन्होंने अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया।"

शाहआलम के पड़ोते की कहानी।

—मैं मिरज़ा जगबहादुर का बेटा हूँ, जो दिल्ली के सम्राट् द्वितीय अकबर के बेटे, शाह आलम के पोते और बहादुरशाह के भाई थे।

जब मेरे पिता मिरज़ा जहाँगीर ने सैटिन साहब अँग्रेज़ के गोली मारी, तो वे इस अपराध के दण्ड में बन्दी करके इलाहाबाद भेजे दिये गये। इलाहाबाद में उन्होंने विवाह कर लिया। मेरी माता नज़रबन्दी के पहरेदार-अफ़सर की लड़की थीं। विवाह होने के बाद से मेरे पैदा होने तक पिता ने मेरे नाना और माता को इतनी सम्पत्ति दी कि सात पीढ़ी तक को काफी होती। मेरी दादी अपने बेटे को दिल्ली से निरन्तर हीरे तथा अशरफियाँ भेजा करती थीं, और उनके पास सम्पत्ति की कुछ कमी न थी। पिता के पर-लोकवास होने के पश्चात् नाना के यहाँ मेरा पालन-पोषण हुआ, और ऐसे लाड-प्यार से पला कि स्यात् संसार में कोई बच्चा मेरे समान आनन्द में न होगा। होश सँभाला, तो सब प्रकार की शिक्षा मुझको दिलाई गई। अरबी-फ़ारसी की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् मैंने कपड़े की दुकान करली।

दिन-भर दुकान्दारी, रात को ईश्वर की कृपा से थोड़ा-सा भजन-पूजन—इसी प्रकार जीवन व्यतीत होता था। चार बच्चे ईश्वर ने दिये थे। बूढ़ी माता अब तक जीवित हैं।

एक दिन थानेदार साहब कुछ कपडा मोल लेने आये। मैंने स्वभाव के अनुसार एक मोल बता दिया। उन्होंने हुज्जत करनी आरम्भ की, तो मैंने कहा—"जनाब, मेरी दुकान पर झूठ नहीं बोला जाता।" इस पर वह बिगड़कर बोले - "बड़ा ईमान्दार है। तेरे जैसे ठग मैंने बहुत जेल-ाने में भिजवा दिये हैं।" मैंने कहा—"थानेदार साहब, ज़बान सँभालकर बोलिये। भले आदमियो की ऐसी बाते नहीं हुआ करतीं।" इस पर उनको इतना क्रोध आया कि तत्काल एक थप्पड मेरे गाल पर मारा। मुझमें भी मुगल-रक्त था, जवाब में दो थप्पड़ मैंने भी मार दिये। सिपाहियों ने मुझको पकड़ लिया, और थाने ले गये। वहाँ थानेदार ने मुझको हवालात में बन्द कराके मेरे घर की तलाशी ली, और चोरी का कपड़ा निकालकर मुझ पर मुक़द्दमा क़ायम कर दिया। बहुत-कुछ मैंने अपना निरपराध होना प्रमाणित किया, और हाकिमों को सच्ची बाते बताईं, किन्तु किसी ने कुछ न सुना, और छ: मास के सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया।

मेरी पत्नी और बूढ़ी माता ने घर का सारा सामान बेचकर मुकद्दमे मे लगा दिया, और वे बेचारी निर्धन हो-

गईं, किन्तु परिणाम कुछ भी न निकला, और यहाँ जेलखाने में आने की नौबत आ गई।

सब से अधिक मुझे माता का शोक है, जो मुझसे हवालात में मिलने आईं थीं, और मेरी दशा देखकर आह खींचकर गिर पड़ी थीं, तथा दूसरे लोक का रास्ता लेलिया था। उस समय मेरा बड़ा लड़का, जिसकी आयु बारह वर्ष की है, उनके साथ था। वह घबरा गया और कहने लगा—"पिताजी, दादीजी मर गईं।" मैं चाहता था कि माताजी को झुककर देखूँ, किन्तु निठुर दारोग़ा के सिपाही मुझको मारकर जेलखाने में ले आये, और माता की लाश वहीं पड़ी रह गई। चलते समय मैंने अपने लड़के को यह कहते सुना—"पिताजी, हम कहाँ जायें ? अब यह सिपाही हमको भी मारेंगे। दादीजी को क्योंकर घर ले जायेंगे ? तुम जरा ठहरो, पिताजी !!"

मैं इसी शोक में रात-दिन घुला जाता हूँ कि पता नहीं स्त्री तथा बच्चों पर क्या बीतती होगी, और निर्दयी थानेदार ने उनके साथ कैसी निठुरतायें की होंगी।

मैं यह सुनकर जोर-से हँसा, और कहा—"यह ससार भी अद्भुत स्थान है। मेरी-तुम्हारी एक ही दशा है। मुझ-में और तुम में एक ही वश का रक्त है। किन्तु, तुम शोक-सागर में डूबे हुए हो, और मैं आनन्द से जीवन व्यतीत करता हूँ।

"वाह ! वाह !! एक सूरत का आदमी, एक खाना, एक पहिनना, एक-सा सोना, एक-सा जागना। किन्तु किसी को तरसने-तड़पने का स्वभाव दिया, और किसी को तरसाने-तड़पानेवाला बना दिया। कोई सदैव शोक-सागर में डूबा रहता है, और कोई प्रातःकाल से सायंकाल तक, तथा सायंकाल से प्रातःकाल तक हँसने-हँसाने के अतिरिक्त किसी दुःख के पास नहीं फटकता।

"भाई साहब, क़ैद तुम भी काटो, और मैं भी काटूँगा। किन्तु तुमको यह जीवन दूभर मालूम होगा, और मैं इस कष्ट को ध्यान में भी न लाऊँगा, और सदैव इसी प्रकार आल्हादित रहूँगा, जैसा कि अब हूँ।"

झाड़ू देनेवाला शाहज़ादा

'आज' और 'कल' के भेद को समझने में यूरोप तथा एशिया के तत्ववेत्ताओं के वचनो पर ध्यान करने से बहुत आसानी हो जाती है। मगर इसको सिर्फ दिमाग समझ सकता है, आँख को देखने का मज़ा नही आता।

४ अगस्त सन् १९१४ ई० मे जर्मन-क़ौम का 'आज' सामने था, और कोई नहीं कह सकता था कि उसका 'कल' क्या होगा। मगर सन् १९१८ ने बता दिया, दिखा दिया, और समझा दिया, कि 'कल' की यह हालत है, और ऐसा दिखाया कि तत्त्व-ज्ञान की आवश्यकता ही न रही।

रूस का 'आज' शताब्दियों से मशहूर था, हिन्दुस्थान का बच्चा-बच्चा उसके हिन्दुस्तान आने का चर्चा सुनता था, और एक भयानक जंगली दुश्मन की चढ़ाई को शान्ति की राहु समझता था। लेकिन 'आज' खतम हुआ, और 'कल' ऐसा देखने मे आया, कि रूस का ताज और तख्त ही औंधा होगर

दिल्ली में मुग़ल-वंश की धूम, मुगल-वंश की तलवार के वारों और महफ़िल के रंगों—दो भिन्न-भिन्न गुणों—के कारण घर-घर मची हुई थी, और हिन्दुस्तान का कोई हिस्सा उनकी महत्ता से इन्कार करने की हिम्मत न रखता था। मगर जब उन का 'आज' ख़तम हुआ, तो 'कल' की हालत किसी से न देखी गई।

सन् १९१७ ई० की बात है। मैं 'ख़तीब' समाचार-पत्र तथा 'निज़ाम-उल्-मशायख़' मासिक-पत्र के सपादक तथा अपने मित्र मुल्ला मौहम्मद उल्वाहिदी के पास बैठा था। वह मेज़ पर सर झुकाये काम कर रहे थे। उनके दफ्तर के और आदमी भी अपने-अपने काम में लगे हुए थे, और मैं एक झाड़ू देनेवाले को देख रहा था, जो दत्त-चित्त होकर चौक को साफ़ कर रहा था, और बाग के फूलों को देखता जाता था। जब वह कमरे का सहन साफ़ कर चुका, तो नल से पानी लेकर फूलों में डालने लगा। उसने प्रत्येक गमले का कूड़ा साफ़ किया। मुरझाये हुए पत्ते तोड़कर फेंक दिये, और गमलों को अपनी-अपनी जगह पर ठीक करने लगा। इतने मे वाहिदी साहब ने आवाज़ दी—'महमूद !' झाड़ू देनेवाला 'हाजिर हुआ जनाब', कहकर दौड़ा, और हाथ बाँधकर सामने आ-खड़ा हुआ, और एक नई आज्ञा पाकर आज्ञा-पालन के लिये बाहर चला गया। उसकी फुरती, उस-की सभ्यता तथा उसका शिष्टाचार मुझको बहुत अच्छा

मालूम दिया। मैंने ख्याल किया कि ऐसा तमीज़दार नोकर बहुत कम देखने में आया होगा। वाहिदी साहब से झाड़ू देनेवाले महमूद का हाल पूछा गया तो मालूम हुआ कि वह तैमूरी शाहज़ादा है, और शाहन्शाह देहली से बहुत निकट का रिश्ता रखता है। मुझको इस खबर ने जिस विचार-सागर में डाला, वह रूस के उस निवासी की बेकरारी से ज्यादा थी, जब कि उसने अपने ताजदार की हत्या का समाचार सुना होगा, क्योंकि वह एक मौत का समाचार था, जोकि समाप्त होगई, और यह एक ज़िन्दगी की सूचना थी, जिसके पूर्ण होने की मैं आशा नहीं कर सकता।

उस दिन के बाद से मैं झाड़ू देनेवाले महमूद को उसकी पुरानी पदवी 'साहब-आलम' से याद करता था, क्योंकि मुगल-काल में सब शहज़ादों को 'साहब-आलम' कहते थे।

मिरज़ा महमूद एक नौजवान आदमी है। अब भी 'खताब' के कार्यालय के निकट उसका मकान है। छोटे-छोटे बच्चों का बाप है, जो शायद अब तक अपने शाही फ़ख्र को न भूले होंगे, क्योंकि पेट की मजबूरी से जब वे अपने बाप को ख़िदमतगारी करते देखते हैं, तो शरमाते हैं। जीतनेवाली क़ौम के बच्चों को काम करने और मेहनत से रोटी पैदा करने में कभी बुरा ख्याल नहीं होता, यदि उनको उम्मीद हो, कि वे इस दुःख के बाद वे फिर एक उन्नति और सफलता के काल में जानेवाले हैं। इस

उम्मीद न होने पर जीवन उनको नर्क दीखने लगता है॥ बाबर और हुमायूँ ने अपने पोते मिरज़ा महमूद से .ज्यादा काल की कुटिलता तथा ससार के संकटों का तमाशा देखा था, मगर अन्त में सब ख़तम होगये। मिरज़ा महमूद क़यामत तक यह उम्मीद नहीं कर सकता, कि उसके गये-दिन भी कभी फिरेंगे, और वह नीच ख़िदमतगारी से छुटकारा पायगा। मिरज़ा महमूद को शायद 'आज' और 'कल' समझने का कभी ख्याल न आता होगा। नहीं तो एक ही दिन में पूरा 'वली' बन जाता, और ख़िदमत लेनेवाले उसके.घर पर सर झुकाते हुए जाते।

इसी दिन जब कि मुझको मिर्ज़ा महमूद की हालत मालूम हुई, वाहिदी साहब ने कहा—"हमारे छापेख़ाने में एक मज़दूर, जो कल चलाने का काम करता है, 'हज़रत मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ मोहद्दस देहलवी' का पोता या धेवता है!" दिल में राजनैतिक ज़ख्म के बराबर एक धार्मिक ज़ख्म भी लगा। क्या .ख़ुदा की शान है कि 'शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब मोहद्दस देहलवी'—जिनकी शागिर्दी का आज तमाम हिन्दुस्तान इक़रार करता है—उनके पोते या नवासे की यह हालत हो कि वह चार आने की मज़दूरी करके पेट पालता है! इससे आजकल के हिन्दुस्तान के बड़े आदमी 'आज' और 'कल' का नतीजा निकाल सकते है, और उनको अपनी उन्नति तथा

ऐश्वर्य की क्षण-भंगुरता का अनुमान हो सकता है । स्पेन के 'क़सर उल् हमरा' और उसके बसनेवालों की बरबादी के इतिहासों में पढ़कर दिल को इबरत आठ आँसू रोती है, किन्तु लाल क़िला देहली के रहनेवालों और हिन्दुस्तान पर ख़ुद-मुख़्तार हकूमत करनेवालों की तबाही पर कोई एक आँसू भी नहीं बहाता ।

झाड़ू देनेवाले महमूद का पुराना मकान दफ़्तर 'ख़तीब' से सौ क़दम की दूरी पर लाल किले में था, जहाँ जवाहरात जड़े हुए पाखाने तथा ग़ुसलख़ाने (स्नानागार) थे, जहाँ ताज और तख़्त की धूम थी, जहाँ दास-दासी कमर बाँधे हुए दौड़ते फिरते थे । यह वही शाहज़ादा महमूद है, जिसको अभी छापेखाने में झाड़ू देता देखा गया था, और जो 'हाज़िर जनाब' कहकर अपने मालिक के सामने दौड़ा हुआ आया था, और जो हाथ बाँधकर हुक्म सुनने के इन्तज़ार में चुपचाप खड़ा होगया था। इसके बड़े हिन्दुस्तान के एक-मात्र शासक थे, जिनके सामने बड़े-बड़े नवाब-राजा हाथ बाँधकर खड़े होते थे, और अपने बादशाह के बुलावे पर 'हाज़िर हुज़ूर' कहकर शीघ्रता से दौड़ते थे। शाहज़ादे महमूद को याद न होगा, किन्तु इतिहास को सब-कुछ याद है। शाहज़ादे महमूद के दिल को क़ुदरत ने सब्र दे दिया, किन्तु इतिहास-लेखक क्योंकर सब्र कर सकते हैं, और किस तरह इस अद्भुत क्रांति को दिल से भुला सकते हैं ? शाहज़ादा महमूद आज एक

ऐसे मकान में रहता है, जहाँ उसके बड़ों का एक कमीन से कमीन ग़ुलाम भी रहना पसन्द न करता। न पक्की दीवार है, न पक्की छत है, न पक्का आँगन है। कच्ची मिट्टी की दीवारे हैं, जिनमें कोयले और ठीकरियों की पच्चीकारी है, और जिन पर मेह की बूँदों ने धूल के कणों को चीर-चीरकर फूल खींचे हैं।

शाहज़ादे महमूद को आज वह खाना मिलता है, जो उसके बुज़ुर्गों के ख़िदमतगारो ने भी कभी नहीं खाया था। वह सूखी रोटियाँ चटनी से खा लेता है। वह उबाली दाल से पेट भर लेता है, और यह भी न मिले तो, अपने असहाय बच्चो को तसल्ली देता हुआ भूखे-पेट सो जाता है। शाहज़ादे महमूद के पास न कमख़्वाब के कपड़े हैं, न ज़रबफ़्त के। वह और उसके बच्चे पैवन्द लगे हुए गाढ़े और गज़ी के कपड़े पहनते हैं, और सरदी आजाय, तो फटी हुई गुदड़ियों और फटे-पुराने कम्बलों को ओढ़कर रात बसर करते हैं। आज, जबकि दिसम्बर का महीना है, देहली में 'नेशनल कांग्रेस' और 'मुस्लिम-लीग' के जल्से हो रहे हैं, और बाहर के मेहमान गरम कमरों में क़ीमती लिहाफ़ और क़ीमती कम्बल ओढ़े पड़े सोते हैं। आज गवर्नमेंट-हाउस में हिन्दुस्तान के शासक आग की अँगीठियों के पास कुर्सियों पर लेटे बातें कर रहे हैं। ठीक आज ही के दिन शाहज़ादा महमूद और उसी की तरह सैकड़ों शाहज़ादे टूटे-फूटे मकानों में

गीले और ठण्डे रेत पर बोरिये बिछाये और फटी हुई रज़ा-इयाँ ओढ़े भूखे-प्यासे एडियाँ रगड़ रहे हैं। इसको कुछ बहुत दिन नहीं हुए। केवल साठ साल का समय बीता है, कि इसी दिल्ली में लाल किला आबाद था, और उसमें शाह-ज़ादे महमूद के बुज़ुर्ग शाल-दुशाले ओढ़े, सोने-चाँदी की मसहरियों में पाँव फैलाये, चैन से सोते थे। उनको यह दशा स्वप्न में भी नहीं दीखती थी कि उनकी औलाद एक दिन मोहताजों और असहायों का जीवन व्यतीत करेगी। अगर उनको स्वप्न में भी कभी यह हालत मालूम होजाती, तो वे अवश्य एक वसीयत आधुनिक दिल्ली के विलासियों के लिये लिख जाते कि समय के फेर को हमेशा याद रखना।

शाहज़ादे महमूद के बच्चे अगर अपने बड़ों का पहला वक्त याद करके कहें कि हमको भी दुशाले मँगवा दो, हम-को भी सुनहली-रुपहली मसहरियाँ बनवादो, हम भी सोने-चाँदी के बर्तनों पुलाव-क़ोरमे खायेंगे, हमको भी हिन्दुस्तान के राजा-नवाब 'साहब-आलम पनाह' कहकर पुकारें, और झुक-झुककर सलाम करें, तो बेचारा महमूद सिवाय इसके कि आँखों में आँसू ले आये, और आसमान को देखकर कलेजा मसोस ले, और क्या खाक जवाब देगा!

जंगी बुखार (युद्ध-ज्वर) के ज़माने में जबकि इन बच्चों का कमाऊ बाप ज़मीन पर बुखार में पड़ा हुआ 'हाय-हाय!' करता था, उन भोले और असहाय बच्चों ने कई-कई वक्त

भूखे-पेट गुज़ार दिये, और अपने नन्हें-नन्हें हाथों से दुआ माँगी—अल्लाह मियाँ ! हमारे अब्बाजान को अच्छा कर दो। छोटे बच्चे ने अगर रोटी की ज़िद की, तो बड़ी बहन ने उसको कलेजे से लगा लिया, और कहा—"देखो, अब्बा अच्छे हो जायें, तो आटा लायेंगे। अम्मा रोटी पकायेंगी, तो हम-तुम मिलकर खायेंगे।" बच्चा कहता है—"अब्बा कब अच्छे होंगे, मुझे तो बहुत भूख लगी है।" तो बहन कहती है—"घबराओ नहीं। अब अच्छे हो जायेंगे, और बाज़ार जायेंगे।" बेचारी मुसीबत की मारी शाहज़ादी बच्चे को अपनी माँ के पास ले जाती, और कहती है—"अम्माजान, रोटी दो।" तो वह उसको प्यार करती और कहती है—'बेटी, रोटी कहाँ से लाऊँ ! ख़ुदा कमानेवाले को जान से बचाले; अभी तो उसी के लाले पडे हुए हैं। मियाँ, हम ग़रीब लोग हैं, न हमारे पास रोटी है, न कपड़ा है। ख़ुदा ख़ुश रक्खे हक़ीम अजमलख़ाँ को, जिन्होंने दवाई का और खाने का बन्दोबस्त किया, और ख़ुदा ख़ुश रक्खे, इस मौहल्ले के नेक आदमी मौहम्मदअली कारख़ानेदार को, जो तुम्हारे अब्बा की और सारे मौहल्ले के बीमारों की ख़बरगीरी कर रहे हैं। उन्होंने खाने को भी पूछा, मगर मैं लज्जा के मारे न कह सकी कि मेरे यहाँ खाना नहीं है। हम तैमूरी नस्ल के लोग हैं। क्योंकर भीख माँगे, और ख़ैरात की रोटी के लिये हाथ पसारें ? यही बहुत है कि ख़ैरात की

दवा तुम्हारे अब्बा के लिये ले ली। देखो बेटा, तुम हिन्दुस्तान के बादशाह के बेटे हो, बादशाह की औलाद भीख नहीं माँगा करती, और न खैरात लेती है। तुम बड़े होकर कभी भीख न माँगना, और अपने अब्बा की तरह मेहनत-मज़दूरी करके रोटी कमाना।"

बच्चे ने रोकर कहा—"अम्मा, मैं और किसी से नहीं मागूँगा। मगर तुम मुझे रोटी दो।"

उस वक्त इस मोहताज और बेबस शाहज़ादी ने आस्मान को देखा, और कहा—"ऐ मालिक! तू ही सब को रोटी देनेवाला है। तू ही सब के बुरे कामों को ढकनेवाला है। मैं किससे अपना दुखड़ा कहूँ, और तेरे सिवा कौन सुननेवाला है? हम पर रहम कर, और बीमार को अच्छा करदे।"

खुदा की मेहरबानी से अब शाहज़ादा महमूद तन्दुरुस्त होगया है, और किसी अच्छे रोज़गार में लगा है, जहाँ उसके खर्च की ज़रूरतों में कमी नहीं पड़ती।

ओ झाड़ू देनेवाले शाहज़ादे! तू और तेरी आजकल की जिन्दगी, तेरे खान्दान के पहले ऐश्वर्य का ख्याल करने के बाद, संसार के शासकों और दौलत के दीवानों के लिये बड़ी शिक्षा देनेवाली हो सकती है, और असार ऐश्वर्य और उच्च-पद का घमण्ड दिमाग से इस तरह निकल सकता है, जिस तरह धूप से सील और खटाई से नशा!! यही इस घटना के लिखने का उद्देश्य है।

साहित्य-मण्डल-द्वारा प्रकाशित

पच्चीस पुस्तकें

१—षड्यन्त्रकारी

फ्रान्स के विख्यात लेखक अलेग्जैण्डर ड्यूमा के एक अत्युत्तम उपन्यास का अनुवाद। मू०सचित्र, सजिल्द का १।।)

२—महापाप

टॉल्सटॉय की सब से अन्तिम और हाहाकारमयी रचना का अनुवाद। मूल्य, सचित्र, सजिल्द का १।।)

३—देहाती सुन्दरी

टॉलसटॉय की एक आप-बीती प्रेम-कहानी।का अनुवाद। मूल्य, सचित्र, सजिल्द का १।।)

४—यौवन की आँधी

रूस के महान् कलाकार तुर्गनेव की एक यौवन-कालीन प्रणय-गाथा का वर्णन्। मूल्य १।।)

५—लेनिन और गाँधी (ज़ब्त) ३)

६—विनाश की घड़ी

.फ्रान्स के आधुनिक महापुरुष, महाशय रोम्याँ रोलाँ के एक प्रसिद्ध नाटक का अनुवाद। मूल्य १)

७—श्रद्धा ज्ञान और चरित्र

(समाप्त होगया है)

८—रूस का पञ्चवर्षीय आयोजन (ज़ब्त) ४।।)

९—राजस्थान

लेखक—स्वर्गीय श्री० श्रीगोविन्द हृयारण। भारत के देशी राज्यों का प्रामाणिक और संक्षिप्त परिचय। ३)

१०—चार क्रान्तिकारी

सवा दो-सौ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल १)

११—जेल-यात्रा

लेखक श्री० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'। मूल्य २)

१२—तलाक़

लेखक—उपरोक्त। मूल्य २)

१३—तपोभूमि

ले०—जैनेन्द्रकुमार जैन और ऋषभचरण जैन। मूल्य २)

१४—जासूसी कहानियाँ

लेखक—सर आर्थर कानन डॉयल। मूल्य १)

१५—टॉल्सटॉय की डायरी

महर्षि टॉल्सटॉय के यौवन-कालीन अनुभव। मूल्य ३)

१६—मधुकरी

मूल्य ३)

१७—फूलदान

उर्दू की फड़कती हुई नीति-कविताओं का संग्रह। ।।=)

१८—मुग़लों के अन्तिम दिन

मूल्य १)

१९—सभ्यता का शाप

महर्षि टॉल्सटॉय का एक सुन्दर नाटक। सचित्र ११)

२०—चार्ली चैप्लिन

मूल्य केवल १)

२१—विश्व-विहार

मू० ३) (मई, १९३३ को प्रकाशित)

२२—दीप-शिखा

हॉल केन के 'मास्टर ऑफ़ मैन'-नामक उपन्यास का अनुवाद। मूल्य ४॥)

२३—दुखिया

ले०—तुर्गनेव। (जून, १९३३ में प्रकाशित) मू० १।)

२४—कम्युनिज़्म

लेखक—प्रो० हैरल्ड जे० लास्की। (जून, १९३३ में प्रकाशित) मूल्य ३)

२५—अभियुक्त

लेखक—श्री ऋषभचरण जैन। कहानियाँ (जून १९३३ में प्रकाशित) मू० २)

Mahatma Gandhi's First Experiment

लेखक—श्रीऋषभचरण जैन। लेखक के हिन्दी-उपन्यास 'सत्याग्रह' का हिन्दी-अनुवाद। मूल्य केवल १)

विश्व-विहार

[हिन्दी-साहित्य का एक अद्वितीय ग्रन्थ-रत्न]

यह युग विज्ञान का है। संसार के प्रत्येक राष्ट्र में नित नये आविष्कार हो रहे हैं। जो बातें कल हमें पता नहीं थीं, वे हमें आज मालूम होगई हैं, जो रहस्य आज अन्धकार के पर्दे में छिपे हुए हैं, उनकी खोज में सैकड़ों मस्तिष्क लगे हुए हैं, और एक-न-एक दिन हम उन्हें जान लेने की पूरी आशा रखते हैं।

अखिल विश्व विचित्रताओं का भण्डार है। इसमें असंख्य प्रकार के ऐसे भौगोलिक, खगौलिक, वानस्पतिक, शारीरिक और यान्त्रिक रहस्य अभी तक हमारी आँख से छिपे हुए, जिन्हें जान लेने की कल्पना-मात्र से रोमाञ्च हो आता है। उदाहरणार्थ, ग्रह-नक्षत्रों के विषय में हम लोग अत्यन्त उत्सुक रहने पर भी इतना कम जानते हैं कि तारों-भरी रात देखकर अपनी विवशता और क्षुद्रता पर मन-ही-मन अधीर हो उठते हैं। तारे क्या हैं? कहाँ हैं? किन-किन पदार्थों के मिश्रण से इनकी व्युत्पत्ति हुई है? उनमें प्राणी रहते हैं—या नहीं? अगर रहते हैं, तो उनका रूप-

रँग, चाल-ढाल और मानसिक विकास किस प्रकार का है? इन प्रश्नों का कोई निश्चित उत्तर हमारे पास नहीं।

यह तो ऐसी बातें हैं, जिनके विषय में हम अधिक जानने में असमर्थ हैं। परन्तु ज्ञान के अक्षय भण्डार का जो अति क्षुद्र अंश आज इस जगत् के मेधावी विद्वान् पा-सके हैं, हम उससे भी अपरिचित ही हैं। जिन लोगों ने प्राणों की बाज़ी लगाकर, सर्वस्व खोकर ज्ञान के चमकते हुए टुकड़ो का पता लगाया है, और जो आज अत्यन्त सस्ते दर में सर्व-साधारण के लिये सुलभ होगये हैं— उनका ज्ञान भी हमें न होना घोर दुर्भाग्य की बात है। जगत् के प्रत्येक सम्पन्न साहित्य में आज उन ज्ञातव्य विषयो पर हज़ारों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका एक कण भी इस गुलाम देश की अभागी राष्ट्र-भाषा में उपलब्ध नहीं। अकेली जर्मन-भाषा में केवल 'सूर्य' के सम्बन्ध में सत्तर हज़ार ग्रन्थ प्रकाशित होचुके है। हमने कलकत्ते की 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' में केवल Tobacco और Anti-tobacco (तम्बाकू के पक्ष और विपक्ष में) विषय पर सैकड़ों किताबें देखी थीं। जब कभी योरोप और अमेरिका से पुस्तकों के नये सूचीपत्र हमारे पास आते हैं, तो एक ही विषय पर ग्रन्थों की संख्या देखकर हमारी हैरत का ठिकाना नहीं रहता। चींटी-जैसे अति क्षुद्र कीट के सम्बन्ध में विदेशी भाषाओं में आप चालीस-चालीस रुपये की एक-एक पुस्तक पा-सकेंगे। जर्मनी के एक प्रोफ़ेसर साहब को बर्लिन के एक प्रकाशक ने केवल इसलिये भारतवर्ष भेजा था कि वे भारत के एक प्राचीन और लोप-प्राय

धर्म का अध्ययन करें, और उस पर जर्मन-भाषा में एक ग्रन्थ लिखें। इस यात्रा का समस्त व्यय और प्रोफ़ेसर साहब का वेतन-भार प्रकाशक के ज़िम्मे था और जब यह पुस्तक छपी, तो उसका दाम शायद एक सौ-आठ शिलिंग था! कुछ दिन पहले ही अफ़ग़ानिस्तान में राज्य-क्रान्ति होने पर हमने उक्त देश के सम्बन्ध में ऐसी ऐसी पुस्तकें देखी थीं, जिनका दाम पच्चीस-पच्चीस और तीस तीस रुपये था।

जिस समय हम देखते हैं, कि पैंतीस करोड़ भारतवासियों की राष्ट्र भाषा कहाने का गौरव रखनेवाली हिन्दी भाषा में संसार के आधुनिक आविष्कारों की प्रगति पर एक भी अच्छा ग्रन्थ नहीं है, तो हमारा हृदय लज्जा और क्षोभ से भर उठता है। यों कहने और देखने को हिन्दी भाषा में आज नित्य अनेक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, किन्तु हमें अत्यन्त ग्लानि के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि इन पुस्तकों में से अधिकांश निरर्थक होती हैं, और उनका उपयोग एक ओछे दर्जे के मनोरंजन के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। बहुत-से हिन्दी-भाषा भाषी प्रौढ़ पाठक भी, जो गम्भीर विषयों के अध्ययन की ओर विशेष रुचि रखते हैं, हमारे साहित्य में अपने मतलब की चीजों का अभाव देखकर शान्त हो जाते हैं। हमारी भाषा का प्रचार रुकने का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है।

इसमें सन्देह नहीं, कि हिन्दी के पाठकों की रुचि अभी तक इतनी परिमार्जित नहीं हुई है, कि वे हलके साहित्य से ऊँचे धरा-

नशे की वस्तुओं में भी पूरी दिलचस्पी ले सकें। जो लोग इसके साहित्य का प्रकाशन करते हैं—निस्सन्देह जिनमें-से एक हम भी हैं—वे अपनी पुष्टि में यही तर्क करते हैं, कि उन्हें पाठकों की रुचि के अनुसार ही पुस्तकें निकालनी पड़ती हैं। किन्तु हमारा विश्वास है, कि किसी भी भाषा के पाठकों की रुचि बिगाड़ने या सुधारने का एक बड़ा उत्तरदायित्व प्रकाशकों पर भी है। किसी समय हिन्दी के पाठक 'क़िस्सा तोता-मैना' और 'साढ़े तीन यार' पढ़ा करते थे। जब ऊँचे दर्जे के मौलिक और अनुवादित उपन्यास बाज़ार में आये, तो लोगों की रुचि बदल गई। इधर ऊँचे दर्जे की राजनैतिक और रचनात्मक पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ हुआ है,—यद्यपि इसकी प्रगति बहुत-सी क्षीण है—तो पाठकों की एक ख़ासी संख्या इस प्रकार के साहित्य की शौक़ीन बन गई है। इसीलिये हमारा विश्वास है, कि यदि और विषयों पर ऊँचे दर्जे की पुस्तकें प्रकाशित की जायँगी, तो जल्दी या देर में पाठक अवश्य उनकी तरफ़ आकर्षित होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन-द्वारा हम इसी प्रकार का एक नया साहस कर रहे हैं। इस पुस्तक का प्रणयन अँग्रेज़ी के अनेक तद्-विषयक ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। विदेशी भाषा में इस प्रकार की हज़ारों-लाखों पुस्तकें—अधिक-से-अधिक क़ीमती हैं। भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी इस प्रकार की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अकेली गुजराती-भाषा में इस प्रकार की पुस्तकों की 'एक एक प्रति का मूल्य सैकड़ों रुपये

तक हो जायगा। बँगला में तो इससे कई गुनी संख्या में ऐसी पुस्तकें मौजूद हैं। हिन्दी में अब तक मुश्किल-से दो-तीन छोटी-छोटी पुस्तिकायें प्रकाशित हुई हैं, जिनका लक्ष्य भी अधिकांशतः बालकों का मनोरञ्जन या ज्ञानवर्द्धन ही है। ऐसी अवस्था में हमारा यह साहस हिन्दी-साहित्य की कितनी क्षति-पूर्ति करेगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। साथ-ही पाठकगण इस पुस्तक की संक्षिप्त विषय-सूची देखकर भी उसके महत्व का अनुमान लगा सकते हैं। इस पुस्तक में आर्ट पेपर पर छपे हुए ७५से सौ तक हाफटोन ब्लॉक और मोटे और मजबूत कागज पर नये टाइप मे छपे हुए चार-सौ से पाँच-सौ तक पृष्ठ होंगे। नमूने के लिये हमने कुछ चित्र विज्ञापन के साथ दिए हैं, जिन्हें देखकर पाठकगण अनुमान कर सकते हैं, कि सारी पुस्तक में कितना व्यय और परिश्रम होगा। सम्पादन, सङ्कलन और चित्रों इत्यादि की लागत का ख़याल रखकर हमने इस ग्रन्थ की पाँच हजार प्रतियाँ छपाने का निश्चय किया है। हम चाहते हैं कि पुस्तक को अधिक से अधिक हाथों में भेजना सम्भव हो सके। इसलिये इस पुस्तक का दाम केवल तीन रुपया रक्खा गया है। अब तक के अनुमान के अनुसार, पाँच हज़ार प्रतियाँ छपवाने पर ही हम इस दुर्लभ ग्रन्थ को इतने कम मूल्य में पाठकों की भेंट कर सकते थे। इसीलिये हमने यह साहसिकतापूर्ण कृत्य कर डाला है। इस पुस्तक की सफलता के लिये हमने अपने वश के सभी

प्रयत्न करने का निश्चय किया है। पुस्तक के लगभग सारे ब्लॉक और चित्र तैयार हो चुके हैं, और मैटर प्रेस में दे दिया गया है। प्रस्तुत विज्ञापन की चालीस हज़ार प्रतियाँ छापकर हमने भारत-वर्ष के प्रत्येक बड़े-बड़े शहर में वितरण कराने का निश्चय किया है, तथा पाण्डु-लिपि की कई नकलें कराकर भारत के कई विश्व-विद्यालयों के प्रधानो तथा देश के अनेक गण्य मान्य शिक्षा-विशारदों के पास उनकी सम्मति जानने के लिये भेजी गई हैं। इस पुस्तक की एक सुन्दर भूमिका लिखने के लिये हमने पूज्यपाद पण्डित मदनमोहन मालवीय, और आचार्य शेषाद्रि-महोदय से निवेदन किया है।

परन्तु हमारे इस साहस और परिश्रम की सफलता पाठकों के सहयोग पर निर्भर है। हिन्दी में किसी पुस्तक की एक-साथ पाँच हज़ार प्रतियाँ छपाकर वेचना साधारण बात नहीं है। यदि हमारे कृपालु ग्राहकों ने इस महत्वपूर्ण पुस्तक को अपनाकर हमारी उत्साह वृद्धि की, तो हमें विश्वास है, हम मातृ-भाषा के चरणों में ऐसे-ऐसे सैकड़ों-हज़ारों ग्रन्थ भेंट करेंगे।

विनीत,

ऋषभचरण जैन।

नोट—स्थायी ग्राहकों को इस पुस्तक पर कोई कमी-शन नहीं दिया जायगा।

विश्व-विहार

की

संक्षिप्त विषय-सूची

३६—सूर्य्य का कलङ्क ।

३७—डाकू केंकड़ा ।

३८—ढोल गर्जता क्यों है ।

३९—कुबड़ा पेड़ ।

४०—एक पृथ्वी के दस करोड़ चन्द्रमा ।

४१—बिल्ली के नौ अवतार ।

४२—ज़मीन से ढाई मील ऊँची झीलें ।

४३—पुच्छल तारे क्या हैं ।

४४—चुम्बक शक्ति का चमत्कार ।

४५—झरने में पानी कहाँ से आता है ।

४६—हवा के विषय में आश्चर्यजनक बातें ।

४७—अन्धे आदमी छूकर कैसे ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ।

४८—मिल में आटा किस तरह पिसता है ।

४९—हवा का पानी ।

५०—कुछ मनोरञ्जक प्रयोग ।

<u>पुस्तक पहली मई को अवश्य प्रकाशित हो जायगी ।</u>

डाकू केंकड़ा
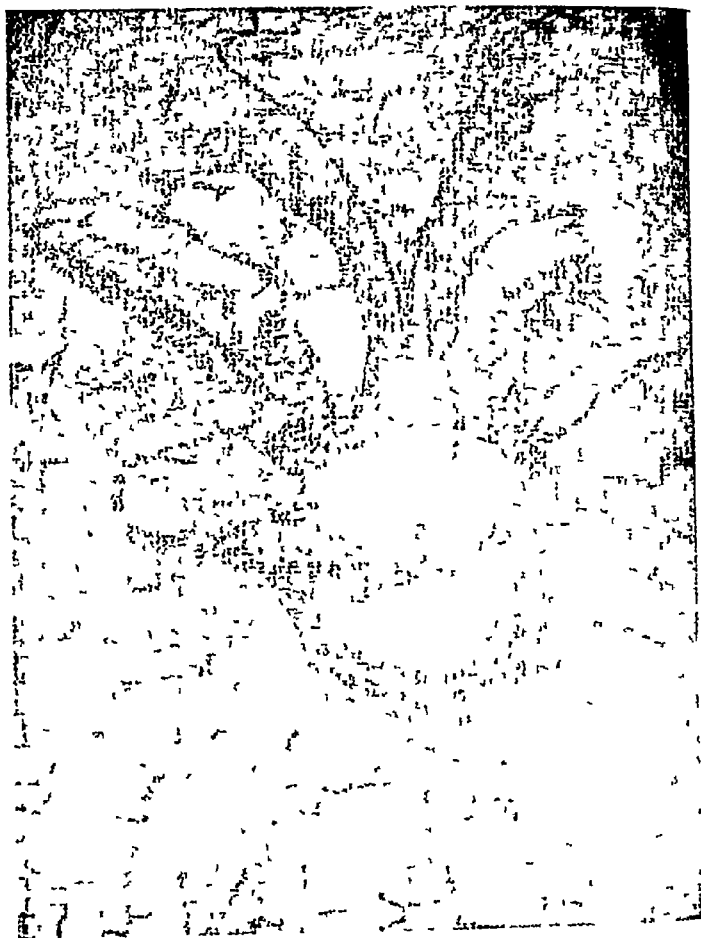
यह भीषणकाय केंकड़ा अपने शिकार की खोज में ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर चढ़ जाता है, और बड़े-बड़े पक्षियों का भक्षण कर जाता है।

आकाश-मछली
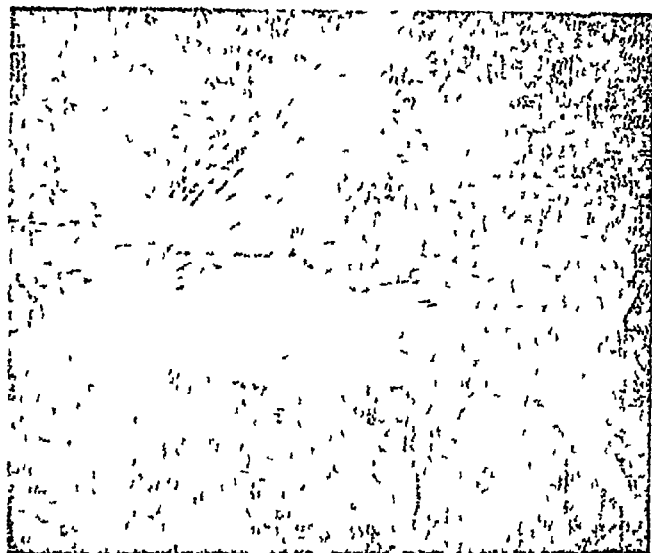
यह मछली पाँच-सौ फ़ीट तक उड़कर जा सकती है। आकाश और समुद्र के हिंसक जन्तु सदैव उसके प्राणों के ग्राहक रहते हैं।

समुद्री दानव

ऑक्टॉपस-नाम का एक विशालकाय सामुद्रिक जन्तु अगम्य जल में निर्विकार रूप से भ्रमण कर रहा है।

कुबड़ा पेड़

इस पेड़ की आयु ७२ वर्ष और लम्बाई केवल दो फ़ुट है। इसमें अपनी जाति के बड़े पेड़ों की भाँति ही निर्दोष फल फूल लगते हैं।

नमाज़ी चिड़िया
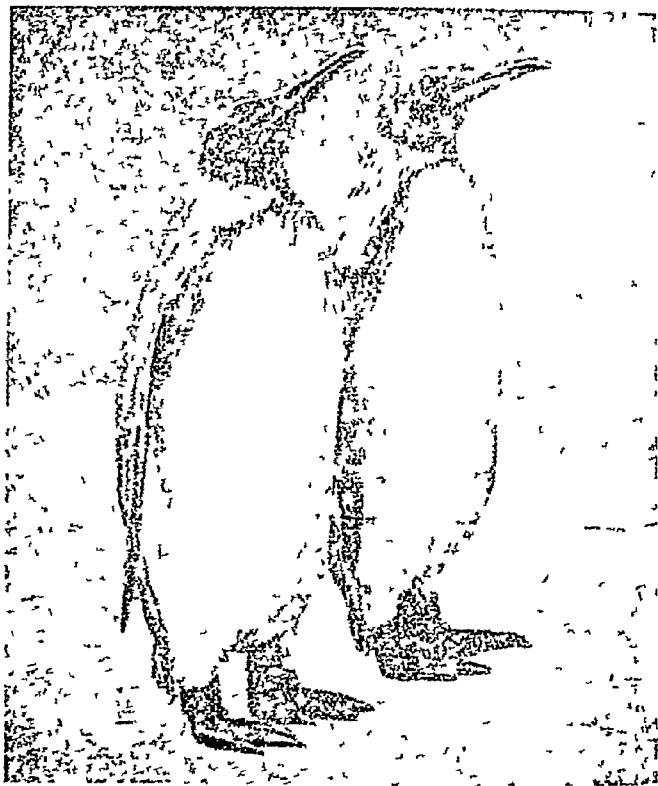
इस विचित्र चिड़िया का मनोरञ्जक विवरण भी 'विश्व-विहार' में पढ़िये।

प्यास बुझानेवाला वृक्ष

जहाँ चारों तरफ़ रेत के लम्बे-लम्बे मैदान हैं, और पानी मोहरों के मोल बिकता है, वहाँ प्रकृति ने इस वृक्ष की उत्पत्ति की है, जो राह-चलते लोगों की प्राण-रक्षा करता है।

सौ मील प्रकाश फेंकनेवाला लैम्प
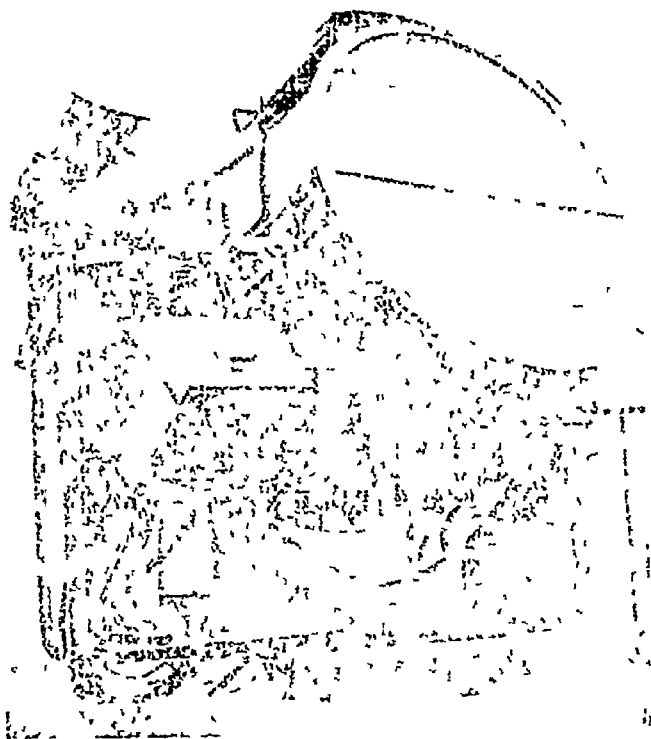
गत योरोपीय महायुद्ध में इस अद्भुत लैम्प का आविष्कार हुआ था। आजकल प्रत्येक समुद्री और हवाई जहाज़ में इस लैम्प का उपयोग होता है। इसका प्रकाश जिस जगह पड़ता है, दिन का-सा चाँदना होजाता है।

Calcutta Art Press, Delhi.